राष्ट्रीय जीवन-चरित माला

साने गुरुजी

मूल मराठी लेखक

यदुनाथ थत्ते

अनुवादक

रामेश्वर दयाल दुबे

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

पहला संस्करण 1988 (शक 1909)

दूसरी आवृत्ति 1990 (शक 1912)

Sane Guruji (*Hindi*)

रु. 8.50

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित।

अनुक्रमणिका

मी जीवनाचा एक नम्र उपासक आहे
सजीवनाटकाचा सारा संसार सुखी नि
समृद्ध व्हावा, ज्ञानाने ज्ञानसंपन्न नि कलेने
मंडित व्हावा, रसानंदसंपन्न नि प्रेममय
व्हावा हीच एक माझी तळमळ आहे. माझे
लिहिणे व बोलणे, माझे विचार व माझी
भावना या एकाच ध्येयासाठी असतात.

१८ ३/४९ — साने गुरुजी

1. मातृ-छाया में

महाराष्ट्र का जो भूभाग एक संकरी पट्टी के रूप में पश्चिमी (अरब) सागर से लगा हुआ उत्तर-दक्षिण फैला है, 'कोंकण' कहलाता है। कोंकण में चार जिले आते हैं—सिन्दुदुर्ग, रत्नागिरी, रायगढ़ और ठाणे। पश्चिम में जिस प्रकार समुद्र है, पूर्व में सह्याद्रि पर्वत है, इसलिए कोंकण एक संकरी पट्टी बन गया है। प्राकृतिक सौन्दर्य का उसे वरदान मिला हुआ है।

रत्नागिरी जिले के दापोली तालूका में पालगढ़ नाम का एक सुन्दर गांव है। प्राचीन काल में कोंकण में खोत पद्धति अर्थात छोटी जमींदारी पद्धति चालू थी। पालगड़ के भाऊराव साने एक छोटे जमींदार थे। उनका असली नाम तो सदाशिव राव था, पर सभी लोग उन्हें 'भाऊराव' नाम से जानते थे। वड्दली गांव में उनकी जमींदारी थी। यह जमींदारी आर्थिक दृष्टि से अच्छी नहीं थी।

भाऊराव भावना शील व्यक्ति थे। भारत परतंत्र था—उसका उन्हें दुख था। देश के लिए काम करने वालो के प्रति उनके मन में विशेष आदर था। राष्ट्रीय आन्दोलन के वे प्रबल समर्थक थे। और इसी सिलसिले में उन्हें छः मास का कारावास दंड-भोगना पड़ा था। भाऊराव की पत्नी का नाम था—यशोदा। जमींदारी की पैदावार अधिक न थी, फिर भी उन्हें जमींदारी की ठसक थी। देखने में तो सब कुछ बड़ा-बड़ा था, पर था वह पोला। किसी तरह काम चल रहा था।

ऐसे घर में ता. 24 दिसम्बर 1899 को एक पुत्र का जन्म हुआ। महाराष्ट्र के मुख्य देवता पढंरपुर के पांडुरंग हैं। इसलिए बच्चे का नाम 'पांडुरंग' रखा गया। किन्तु मां तो उसे मात्र 'पढरी' पुकारती थी। अन्य लोग उसे अण्णा (अर्थात बड़े भाई) कहते थे। यशोदाबाई को सब लोग 'बयो' पुकारते थे। पुत्र पंढरी पर मां की विशेष ममता थी। पुत्रों के लिए काम करती-करती वह थक जाती थी, किन्तु इस बात पर वह बहुत ध्यान देती थी कि उसके बच्चे बहुत अच्छे बनें। कभी आवश्यक हुआ तो उन्हें डांट भी देती थी।

बयो अत्यन्त स्नेहमयी थी। मजदूर-नौकरों के साथ उसका व्यवहार स्नेह-

मय रहता था। जानवरों पर, पेड़-पौधों पर उसका प्रेम था। पास-पड़ोस वालों के साथ भी उसका व्यवहार अच्छा था। मात्र मौखिक शिक्षा देने के बदले बच्चों के मन में सच्चे अर्थ में 'मातृ देवो भव' का भाव भरने के लिए उसका सारा प्रयत्न था। इसी उद्देश्य से वह अनेक नेमधर्म तरह-तरह के काम-व्रत, पूजा-पाठ आदि करती थी। वह अच्छी तरह जानती थी कि प्रत्यक्ष शिक्षा की अपेक्षा जीवन में आने वाले अनुभवों का प्रभाव बालपन पर ज्यादा पड़ता है और वह स्थायी होता है।

मां ने एक दिन पंढरी को नहलाया। पंढरी ने मां से कहा—"मां, तू अपना पल्लू जमीन पर फैला दे, तो मैं अपने पैर उस पर रखूं। ऐसा करने से तलवों में गन्दगी नहीं लगेगी। मां ने वैसा ही किया और पंढरी ने अपने पैर पल्लू पर रखे। उसी समय मां बोली—"बेटा, तलवों में गंदगी लगने न पाये, इसकी जितनी चिन्ता तू कर रहा है, उतनी ही चिन्ता इस बात की भी करना कि मन को भी किसी प्रकार की गन्दगी न लगने पावे।"

एक बार भाऊराव पर डाकुओं ने आक्रमण किया। उनके जीवन की रक्षा हो, इस उद्देश्य से बयो ने सावित्री का व्रत रखा। जेठ मास की पूर्णिमा अर्थात वट पूर्णिमा। वटपूर्णिमा के दिन वट वृक्ष की प्रदक्षिणा की जाती है। एक वर्ष ऐसा हुआ कि वटपूर्णिमा के दिन बयो बीमार पड़ गई। प्रदक्षिणा किये बिना तो काम चलता न था, इसलिए उसने पंढरी से कहा—"मेरे बदले में क्या तू वट की प्रदक्षिणा करेगा? कर तू। भगवान को सब कुछ ज्ञात है।"

पंढरी को लज्जा लग रही थी। अन्य महिलायें क्या कहेंगी? वह आगा-पीछा करने लगा। यह देखकर मां ने कहा—"पंढरी! अरे भगवान के काम में कैसी लज्जा? अच्छे काम करने में कभी लज्जा नहीं करनी चाहिए।"

देव पूजा के लिए बच्चे फूल लाया करते थे। अधिक से अधिक फूल लाने की स्पर्धा बच्चों में रहती थी। पंढरी को लगता था कि वह अपने देवता को फूलों से भर दे, ताकि उसकी सुगन्ध हमेशा सब ओर आती रहे। एक दिन ऐसा हुआ कि दूसरे लड़के सब फूल चुन कर ले गए। पंढरी को बड़ी निराशा हुई। अगले दिन पंढरी सबसे पहले पहुंचा और फूल ही क्या, कलियां भी तोड़ कर ले आया। पास-पड़ोस के बच्चे बयो के पास शिकायत करने आये। तब पंढरी को बुलाकर मां ने कहा—"पंढरी, फूलने से पहले ही कलियों को तोड़ना बुरी बात है। उन खिलती कलियों को पौधों पर ही फूलने देना चाहिए। जल्दबाजी मत कर। और फिर सब जगह भगवान तो एक ही है। पड़ोसी का भगवान भी अपना भगवान है। उनके देवता को फूल मिले, तो

ऐसा समझ कि अपने ही देवता को फूल मिले । फिर कभी ऐसा न करना ।"

एक बार लकड़ी बेचने वाली एक बुढ़िया डोरी से बंधा लकड़ियों का गट्ठा सिर पर लिये जा रही थी । बेचारी थक गई थी । इसलिए लकड़ियों का गट्ठा नीचे गिर गया । बुढ़िया ने फिर से गट्ठे को ठीक किया, पर अब उसे कौन उठवाता ? गट्ठा उठवा देने के लिए वह किसी का रास्ता देखने लगी । बुढ़िया अछूत थी, इसलिए उसकी सहायता करने कौन आता, कैसे आता ?

बयो ने पंढरी को बुलाया और गट्ठा उठवाने को कहा । उन दिनों अछूत-प्रथा चालू थी । अछूतों को छूना भी पाप माना जाता था । लकड़ी बेचने वाली बेचारी बुढ़िया ऐसे ही वातावरण में पली थी, इसलिए वह स्वयं नहीं-नहीं कहने लगी ।

बयो ने मन में सोचा कि बेचारी बुढ़िया लकड़ियों का गट्ठा बाजार तक कैसे ले जायेगी, लकड़ियां कब बिकेंगी । उसके बाल बच्चे घर पर उसकी राह देख रहे होंगे ।

पंढरी की मदद से बयो उसके गट्ठे को अपने घर ले आई । बुढ़िया से विश्राम करने को कहा । उस गट्ठे का दाम चुकाया । बुढ़िया को कुछ खाने-पीने को दिया, तब उसे घर जाने दिया ।

यह सब देखकर पास-पड़ोस के लोगों में कांव-कांव शुरू हुई । तब बयो ने पंढरी से कहा—"अच्छे शुभ काम करते समय लोगों की बेकार बातों पर ध्यान नहीं देना चाहिए । दीन दुखी गरीब की सहायता करने में लज्जा की क्या बात ? उसमें छूआछूत की कोई बात नहीं है ।"

पंढरी को पानी से बहुत डर लगता था । तैरना तो प्रत्येक को आना ही चाहिए । तैरने के लिए जब दूसरे लड़के बुलाने आते, तो वह कहीं छिपकर बैठ जाता था । बयो को यह अच्छा नहीं लगता था । एक बार वह इसी प्रकार छिपकर बैठा था, कि लड़कों ने उसे खोज निकाला । बयो ने पंढरी को पतली संटी से मारकर छावड़ी पर भेजा । तैरना सीखाने वाले ने पंढरी के मन से पानी का डर निकाल दिया । फिर तो पंढरी को मजा आने लगा । वह पानी में स्वयं कूदने लगा । प्रशंसा के साथ इस बात की जानकारी लड़कों ने बयो को दी । लेकिन पंढरी तो गुस्से में था, क्योंकि उस पर मार पड़ी थी ।

बयो ने चोट लगे स्थानों पर हल्के हाथ से तेल लगाया और कहा—"अगर कोई कहे कि मेरा बेटा डरपोक है, तो क्या अच्छा लगेगा ? मुझे तो ऐसा लगता है कि आदमी को निर्भय, भले काम में लज्जा न करने वाला, सबके साथ अच्छा व्यवहार करने वाला, स्नेहशील, गाय-गोरुओं पर, पेड़-पौधों पर,

फूलों पर प्रेम करने वाला होना चाहिए। मां बच्चे को छड़ी से क्यों मारती है? बच्चे की भलाई के लिए ही न।"

भाऊराव बच्चों को बहुत तड़के ही उठाते थे। उन्हें प्रातःकाल गाये जाने वाले श्लोक, अभंग आदि रटना सिखाते, उनका अर्थ भी समझाते थे। वे बहुत अच्छी-अच्छी बातें बताते थे। सन्ध्या के समय दीपक जलाने के लिए मां सब बच्चों को साथ लेकर बैठती और आरती, स्तोत्र पहाड़े आदि बच्चों से कहला लेती थी। दोपहर भोजन के समय बच्चों से श्लोक कहलाती।

जब पंढरी को पढ़ना-लिखना आ गया, तब उसे पुस्तक पढ़ने में मजा आने लगा। वह कविताएं कंठस्थ करने लगा। उसकी स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी।

11 फरवरी 1905 के दिन पंढरी को पालगड़ की मराठी शाला में दाखिल कराया गया। स्कूल में उसका नाम 'पांडुरंग सदाशिव साने' लिखाया गया। स्कूल में थोड़ी फीस भरनी पड़ती थी। मगर घर में इतनी गरीबी थी कि वह थोड़ी-सी फीस भी भरी न जा सकी। इसलिए 11 जून 1906 के दिन उसका नाम स्कूल रजिस्टर से काट दिया गया। उसके छः महीने के बाद फीस जमा करने पर पंढरी का नाम स्कूल रजिस्टर में पुनः लिखा गया, और इस तरह पंढरी की प्राथमिक शिक्षा की गाड़ी फिर चल पड़ी।

स्कूल में कुछ निश्चित घंटों में ही सामान्य शिक्षा मिला करती थी। घर में दिन-रात मां-बाप से सहज शिक्षा मिला करती थी। पंढरी का विकास ठीक हो रहा था। शारीरिक विकास के साथ-साथ मन-बुद्धि का भी विकास हो रहा था। पालगड़ में पांचवीं कक्षा तक का ही स्कूल था। पंढरी ने पांचवीं परीक्षा पास कर ली। उससे आगे की पढ़ाई की व्यवस्था गांव में न थी। कहीं न कहीं बाहर जाना होगा। आगे की शिक्षा के लिए पंढरी को किसी दूसरे गांव भेजने के अलावा और कोई चारा न था। बिना पढ़े-लिखे गरीबों का गुजारा नहीं।

2. ज्ञानार्जन के लिए कष्टमय जीवन

पालगड़ में पांचवीं कक्षा से आगे शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा नहीं थी। पुणे-बम्बई में रहने वाले मामा के पास रखकर पंढरी को पढ़ाने का विचार हुआ, किन्तु उसका मन वहां नहीं लगा। दापोली में उसकी एक बुआ थी, यहां पंढरी को रखने का निश्चय हुआ। दापोली, पालगड़ से मात्र 18-19 किलोमीटर की दूरी पर है, इसलिए बीच बीच में भेंट करने की सुविधा थी।

दापोली का स्कूल विशेष प्रसिद्ध था। उसके मुख्य अध्यापक जोशीजी थे। वे देशभक्त थे। अंग्रेजी पर उनका अच्छा अधिकार था। बड़े-बड़े व्यक्तियों के भाषणों को वे लड़कों को कंठस्थ कराते थे। वे चाहते थे कि लड़के अंग्रेजी साहित्य में रस लें। राधारमण नाम के एक दूसरे शिक्षक थे। वे संस्कृत पढ़ाते थे। देशप्रेम की वे साक्षात मूर्ति थे। देशभक्ति के तथा अंग्रेजी और मराठी साहित्य के संस्कार पंढरी पर पड़े। पठन-पाठन की लगन लग गई। बहुत कुछ पढ़ डाला।

'नवनीत' और 'काव्यदोहन' काव्य संग्रहों को पढ़ने से कविता करने का शौक पदा हुआ। शब्दों को पंख लग गये और मन के आंगन में वे नाचने लगे, किलोल करने लगे।

स्कूल के शिक्षक विविध विषयों पर सारगर्भित भाषण दिया करते थे। कभी किसी विषय पर पक्ष-विपक्ष में वाद-विवाद कराते थे। ऐसा कराने में शिक्षकों का मुख्य उद्देश्य यह था कि बच्चों में वह शक्ति पैदा हो सके कि वे किसी विषय पर गम्भीरता से विचार कर सकें, विपक्ष के विचारों को धैर्यपूर्वक सुन सकें और फिर निर्णय ले सकें।

प्रसिद्ध कीर्तनकार गांव में आते थे। कीर्तन में भक्ति संगीत सुनने को मिलता था। एकाध पौराणिक, ऐतिहासिक कथा उसमें जुड़ी रहती थी। कीर्तनकार बीच-बीच में विनोद की वर्षा करते। कहानी, दन्तकथा को शामिल करने से कीर्तन में और भी रंग भर जाता था। पंढरी ने उस समय इस प्रकार के अनेक कीर्तन सुने थे।

बुआ और दादा—दोनों ही बड़े परिश्रमी थे, अत्यन्त व्यवस्थित थे। पंढरी

घर के सभी काम आनन्द से करने लगा। लेकिन उधर पालगड़ में घर की आर्थिक स्थिति बिगड़ती चली जा रही थी। पिताजी को किसी के सामने हाथ पसारने में अपमान अनुभव होता था। मां तरह-तरह के कष्ट उठाती थी।

साप्ताहिक छुट्टी मनाने के लिए पंढरी पैदल दापोली से पालगड़ जाया करता था। पहुंचते ही मां के सारे कामों में हाथ बंटाने लगता। उसमें कोई परेशानी अनुभव न करता। किसी भी उपयोगी काम को वह छोटा नहीं समझता था। झाड़ू देना, चौका लगाना, बर्तन धोना, कपड़े धोना, चक्की पीसना, धान कूटना—ऐसे सब कामों को मां के साथ वह आनन्द और उत्साह के साथ करता था। लेकिन गरीबी तो सभी ओर मौजूद थी। मां की साड़ी, पिताजी की धोती मच्छरदानी सी हो गई थी। भूसी तक की रोटी बनाने की नौबत आ गई थी। माता-पिता इसी आशा पर कष्ट उठा रहे थे कि बेटे पढ़-लिख कर बड़े हो जायेंगे, फिर अच्छे दिन आवेंगे।

पंढरी का बड़ा भाई गजानन दादा मामा के पास रह कर पढ़ रहा था। उसको देवी का प्रकोप हुआ। थोड़ा स्वस्थ होकर वह घर आया। गरमी का उसे विशेष प्रकोप हुआ था, लेकिन गरीब के भाग्य में गुलकन्द कहां! मां ने उसकी गरमी को शान्त करने के लिए प्याज का पाक बनाया। गुड़ की चासनी में प्याज को पकाया। उसके खाने से गरमी शान्त होती है। दूसरे बच्चों को प्याज-पाक तक देने की आर्थिक परिस्थिति न थी। छोटे भाई चाहते थे कि उन्हें भी प्याज का पाक मिले। वे आशा भरी दृष्टि से देखते रहते। मां दे नहीं पाती थी इसलिए मां के मन को बहुत दुख होता था।

एक दिन पंढरी ने कहा—"मां मुझे भी प्याज-पाक दे न!"

मां बोली—"वह क्या कोई मिठाई है। वह तो औषधि है, इसलिए दादा को देती हूं। देवी निकलने के कारण उसको उष्णता हो गई है। उसे शान्त करने के लिए यह प्याज-पाक देती हूं।"

दुखी होकर पंढरी ने कहा—"तब होने दो मुझे भी देवी। तब तो तू मुझे प्याज-पाक देगी न?"

यह सुनकर मां की आंखों में जल भर आया।

गरीबी मनुष्य के जीवन में अनेक विरोधी बातें पैदा करती है। मनुष्य के लिए अन्न, वस्त्र, घर, चिकित्सा की सुविधा और शिक्षा की व्यवस्था तो प्राथमिक आवश्यकतायें हैं। इनकी तो सामाजिक व्यवस्था होनी चाहिये। इस विचार ने पंढरी के मन में घर बना लिया। माता-पिता और भाई एक दूसरे के प्रति

प्रेम के कारण बहुत कुछ कर रहे थे। परस्पर का प्रेम तो महत्व रखता ही है, परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। पंढरी इतना समझने लगा था।

स्कूल में भी एक ऐसा ही मार्मिक प्रसंग सामने आया। गुरुजी ने कहा कि जिन विद्यार्थियों को स्कूल फीस की माफी चाहिये, वे खड़े हो जायं। पंढरी भी खड़ा हो गया। तब गुरुजी ने उसे चिढ़ाते हुए कहा—"अरे साने! तुझे फीस की सहूलियत क्यों? तेरा घराना तो कितना प्रसिद्ध है।"

बेचारा पंढरी क्या उत्तर देता? वह अत्यन्त दुखी हो गया। आगे पढ़ाई कैसे होगी?

पंढरी को पता चला कि औंध राज्य के गरीब विद्यार्थियों को खाना-पीना और शिक्षा मुफ्त में मिलती है। औंध के राजा विद्याप्रेमी थे, इसीलिए उन्होंने ऐसी सुविधा दे रखी थी। पंढरी ने औंध जाने की तैयारी की और औंध जा पहुंचा। वहां पहुंचने पर पता चला कि बाहर के विद्यार्थियों को यह सुविधा बन्द कर दी गई थी। पंढरी पर आसमान टूट पड़ा। किन्तु उसने निश्चय किया कि कितनी भी कठिनाइयां आवें, वह अवश्य पढ़ेगा। भूखा रहना पड़ रहा था। मां के कष्टों की याद आती थी। मां के लिए मन तड़पता था। किसी तरह जीवित रहने का प्रयत्न चालू था। पड़ोस के और स्कूल के मित्र जितनी बन सके, पंढरी की सहायता करते थे। पढ़ने-लिखने में कोई बाधा नहीं आने दी जाती थी।

इसी बीच वहां प्लेग फैल गया। लोग गांव छोड़कर जाने लगे। स्कूल में छुट्टी कर दी गई। पंढरी के सामने अब प्रश्न था कि अब वह कहां जाए, कैसे जाए? कम्बल और पुस्तकें बेच कर वह पालगड़ वापस आया। घर आकर मां के साथ काम करने लगा।

एक दिन भाऊराव ने अपनी पत्नी से कहा—"ऐसा दिखाई पड़ता है कि पंढरी का चित्त अब पढ़ने में नहीं लगता। औंध जाने की बात नहीं चलाता।" बयो के कहा—"अभी तक प्लेग समाप्त नहीं हुआ है। स्कूल खुले नहीं हैं, इसीलिए वह यहां रह रहा है। मेरे ही चार काम कर देता है।"

भाऊराव ने कहा—"ऐसी अंधी ममता किस काम की? इस बात में लाड करना उचित नहीं। अगर पढ़ेगा नहीं, तो जीवन में उन्नति कैसे करेगा?"

पंढरी ने इस बातचीत को सुना। उसे बुरा लगा। वह निकला। बम्बई में एक सप्ताह रहा। वहां भिन्न प्रकार का ही वातावरण था।

शिवराम महादेव परांजपे की जप्त हुई 'काळातले निबन्ध' नाम की स्वतंत्र

विचारों वाली पुस्तक पंढरी के पढ़ने में आई। काकासाहेब खाडीलकर के देश भक्ति पूर्ण भाषण पंढरी ने सुने।

पंढरी का बाल साथी रामजोशी पुणे में पढ़ रहा था। पंढरी ने उसको पत्र भेजा। उसने उत्तर में लिखा कि रहने की व्यवस्था हो जाएगी। पंढरी पुणे आया और नूतन मराठी विद्यालय में अपना नाम लिखाया। मित्र के परिवार पर भोजन का भार न पड़े, ऐसा सोच कर भूखा रह कर भी मित्र के घर में रहने लगा। मित्र से कह देता था कि उसके दिन* लग गये हैं, और घर से बाहर जाकर पंढरी उतना समय कहीं और बिता देता था।

वास्तव में पंढरी के सप्ताह में ऐसे तीन दिन लगे थे, सप्ताह के शेष दिन उसे उपवास करना पड़ता था। इतना होने पर भी घर के सारे काम वह उतने ही चाव से किया करता था।

मित्र की बहन विषम ज्वर से बीमार पड़ी। पंढरी ने उसके टट्टी-पेशाब के पोट भी साफ किये। सामाजिक उपयोग के किसी भी काम करने में उसे तनिक भी हिचक न होती थी पंढरी की इस सेवा भावना को देखकर सभी लोग उसकी प्रशंसा करते थे।

पंढरी को कहीं से जैसे ही कुछ पैसा दक्षिणा के रूप में मिलता, वह पुरानी चीजों के बाजार जाकर अच्छी-अच्छी पुस्तकें खरीद कर ले आता था। उनको पढ़ता था, मनन करता था। पढ़ने की दृष्टि से वह स्कूल में बहुत अच्छा विद्यार्थी था ही। अन्य विद्यार्थियों के पढ़ने में वह सहायता करता था। बीच-बीच में उसे मां की, पालगड़ की याद आया करती। तब वह दुखी हो जाता था।

मां पर नये-नये संकट आते रहते। उस पर आसमान ही टूट पड़ा हो--- ऐसी उसकी स्थिति थी। गरीबी तो थी ही। कभी-कभी उसे उपवास करने पड़ते थे और लोग जो अपमान करते थे वह अलग।

साहूकार के कर्ज का भार भाऊराव के सिर पर था। साहूकार ने निर्दयता के साथ भाऊराव के घर का तथा सामान का नीलाम करवा लिया। यह

* महाराष्ट्र में गरीब विद्यार्थियों की सहायता करने की प्रथा है। गृहस्थ लोग गरीब विद्यार्थियों को बता देते हैं कि सप्ताह के अमुक दिन वह उनके यहां आकर मुफ्त भोजन कर सकता है। 'दिन लग जाने' का अर्थ यही है कि पंढरी के भोजन की व्यवस्था अन्यत्र हो गई थी।

बात मां के हृदय को बहुत बुरी लगी। उसने खाट पकड़ ली। बेटे के लिए वह छटपटाती थी। यह सोचकर कि पंढरी की परीक्षा में कोई व्यवधान न पड़े, मां ने अपनी बीमारी का समाचार उसके पास नहीं भेजा। स्कूल की अन्तिम परीक्षा का विशेष महत्व था ही। परीक्षा पास हो जाने पर नौकरी का दरवाजा खुलने वाला था।

परीक्षा समाप्त हुई। पंढरी का मन धक-धक कर रहा था। वह दापोली जाने के लिए निकला। बम्बई गया और स्टीमर से हर्णे बन्दरगाह पर उतरा। सामने मौसी दिखाई दी। दुख के कारण उसका चेहरा उतरा हुआ था। पंढरी द्रवित हो उठा। क्यों मां तो पहले ही संसार छोड़ कर चली गई थी। पंढरी के दुख की कोई सीमा न थी। मां तो उसके लिए देवता तुल्य थी। मां के लिए ही तो वह सब कुछ कर रहा था। वही छोड़ कर चली गई। पंढरी का सारा संसार शून्य लगने लगा। मौसी ने उसे समझाया, सान्त्वना दी। पंढरी पालगड़ आया।

पालगड़! मां के बिना पालगड़!! यह कल्पना ही उसके लिए असह्य लग रही थी। श्मशान जाकर वह कितना रोया, कितना रोया। आसपास की प्रत्येक वस्तु के साथ मां की स्मृतियां जुड़ी हुई थीं। क्षण-क्षण पर उसका मन भर आता था।

मां ने कितना सहन किया। ऐसा दुख कितनी माताओं को सहन करना पड़ता होगा। वे सब माताएं मेरे लिए मेरी मां के ही समान हैं। पराधीनता से जकड़ी हुई भारत माता को, जगदम्बा को अपनी सन्तान का दुख देखकर कितना दुख होता होगा!

मां ही पंढरी के लिए भगवान थी। वह मन में प्राय: सोचा करता कि मां मेरी गुरु है, मां मेरे लिए कल्पतरु है। उसके मन में मां की एक भव्य मूर्ति विद्यमान थी। वह कहता—"मां की महिमा अपार है।" माता के दो अक्षरों में सारी श्रुति-स्मृति विद्यमान है, सारे महाकाव्य हैं। माता के दो अक्षरों में माधुर्य का सागर लहराता है। ये दो अक्षर पवित्रता के घर हैं। फूलों की कोमलता, गंगा की निर्मलता, चांद का सौंदर्य, सागर की असीमता, पृथ्वी की क्षमाशीलता अगर देखनी हो, तो थोड़ी देर मां के पास बैठना चाहिये। सम्पूर्ण देवता मां में ही विद्यमान हैं। मां शब्द में अपार त्याग भरा है, असीम सेवा भरी है।

मां बच्चों के लिए जो (लोरी) गीत गाती है (जिन्हें मराठी में 'ओवी' कहते हैं) उनमें सम्पूर्ण सामवेद समाया रहता है। मां बच्चों के लिए जो औषधियां इकट्ठा करती है, उनमें सारा आयुर्वेद भरा रहता है। मां बच्चों के

लिए जो छोटी-बड़ी, राजा रानी की कहानी सुनाती है, उनमें सारा साहित्य भरा रहता है। मां बच्चों को कभी-कभी जो उपदेश देती है, उनमें सारे उपनिषद् भरे रहते हैं।

मां बच्चे को फूल दिखाती है, तितलियां दिखाती है, कौआ और चिड़िया दिखाती है, चन्द्रमा दिखाती है—इसमें सम्पूर्ण सृष्टि का ज्ञान आ जाता है। ऐसा लगता है जैसे मां के आसपास सारे शास्त्र और सारी विद्या खड़ी हैं।

मां के वात्सल्य से ही सम्पूर्ण कलायें निकली हैं, सारी विद्यायें निकली हैं। सारे शास्त्र निकले हैं। मां अर्थात वेद माता, ज्ञान माता! मां अर्थात् ॐ। मां अर्थात् पूर्णता और सन्तोष की वर्षा। मां अर्थात् शान्ति, शान्ति, शान्ति!

पंढरी सोचने लगा—क्या मां इसलिए तो नहीं मर गई कि अगर वह जिंदा रही, तो पंढरी उसी के मोह पाश में बंधा रह जावेगा।

इसीलिए भारत माता की, अर्थात् जगदम्बा की गोदी में मुझे डालकर मां चली गई। अब उसी की सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है।

मन में ऐसी भावना पैदा होने पर पंढरी पुणे वापस आया। स्कूल की अन्तिम परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ था। उसके मन में एक ही दुख था कि इस सफलता को देखने के लिए अब मां नहीं है।

3. विश्व के खुले प्रांगण में

मां की आकस्मिक मृत्यु के दुख से पंढरी जल्दी ही मुक्त हुआ। उसके मन में हमेशा यह विचार आता रहता था कि मां बेटे को खूब पढ़ाना चाहती थी। मां की याद करता पंढरी पुणे आया। कालिज में अपना नाम लिखाया। कभी बाहर से लाकर कुछ खा लेता, तो कभी स्वयं अपने हाथों रसोई तैयार करता और खा लेता। कभी-कभी उपवास भी करना पड़ता। एकाध बार दूसरों को पढ़ाकर अपने खर्च के लिए चार पैसे इकट्ठे करता। इस प्रकार कालेज का संघर्ष पूर्ण जीवन प्रारंभ हुआ। यह सोचकर कि काम करने का जो अवसर उसे प्राप्त हुआ है, वैसा अवसर बहुतों को कब मिलता है, पंढरी ने इस अवसर का भरपूर लाभ उठाने का निश्चय किया। पाठ्यक्रम में निर्धारित सभी पुस्तकों को तो वह पढ़ता ही था, इसके अलावा यह भी जानता था कि दुनिया के बारे में जानकारी देने वाली पुस्तकें पुस्तकालय में मिलती है। उसने उनका भी भरपूर फायदा उठाने का निश्चय किया। अंग्रेजी, संस्कृत तथा मराठी भाषा की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों का उसने अध्ययन किया। सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक करने वाले हरिनारायण आपटे के उपन्यास, विवेकानन्द और रामतीर्थ जैसे चिन्तकों का चेतना प्रदान करने वाला साहित्य, दर्शन की गम्भीरता का परिचय देने वाला श्री अरविन्द का साहित्य, रवीन्द्र नाथ ठाकुर की हृदयस्पर्शी कविताओं, टालस्टाय, कार्लाइल, रस्किन की विचार प्रेरक पुस्तकों को तथा लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी के लेखों को आत्मसात् करने के लिए पंढरी बड़े मनोयोग से जुट गया। उसके मन में विचार आता कि पाश्चात्य साहित्य की गौरव-गरिमा से अपने मराठी भाषा-भाषी समाज को परिचित करना हमारा कर्तव्य है। इस प्रकार की उसके मन में विकट लालसा थी—

जगत के सारे उच्च विचार।
हमारी भाषा में साकार॥

वाल्ट ह्विटमेन की 'लीव्स ओफ ग्रास' ने उसके मन को बहुत प्रभावित किया, अत: उसने 'तृणपर्णी' नाम से उसका मराठी से पद्यमय अनुवाद कर डाला। चूंकि बचपन से ही पंढरी सन्त-साहित्य से अच्छी तरह परिचित था, उसके लेखन में प्रासादिकता का स्वयं आना स्वाभाविक था।

स्काउट आन्दोलन में भी पंढरी शामिल हुआ। स्काउट के बालवीर के लिए यह एक नियम रहता है कि प्रतिदिन उसे कोई न कोई अच्छा काम करना चाहिये। ऐसा मान कर दूर-दूर गांवों से बाजार में साग-भाजी बेचने के लिए आने वाली औरतों की, उनकी साग-भाजी बिक जाने के पश्चात शेष बोझों को सिर उठवाने में सहायता करने लगा।

नवयुवकों की उसने एक मित्र-मंडली तैयार की। उस मंडली में व्याख्यान के साथ-साथ गम्भीर चर्चा भी होने लगी।

एक बार पंढरी साने ने स्वामी रामतीर्थ पर विशेष जानकारी भरा और विचारोत्तेजक व्याख्यान दिया। शहर से जब कभी किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का भाषण होता, तो उसको सुनने के लिए साने नियमपूर्वक जाता। पुणे के नगराध्यक्ष हरिभाऊ आप्टे ने निरक्षरों की गणना करने का महत्वपूर्ण काम अपने हाथ में लिया। इस कार्य में सहयोग देने के लिए उन्होंने विद्यार्थियों का आह्वान किया। अपने को स्वयं-सेवक समझने वाला साने उस काम में लग गया।

साने सोचता था कि पाठ्यक्रम का नियमित अध्ययन करते हुये जीवन का अध्ययन करना भी बहुत जरूरी है। साने निरन्तर प्रयत्नशील रहता कि उसका हाथ प्रत्येक कार्य करने के योग्य हो, मन सब का प्रेमी हो और बुद्धि सर्वांगीण हो।

देश में नवीन चेतना का निर्माण शुरू हो गया था। साने जैसा युवक का मन उससे दूर रहता, भला यह कैसे सम्भव था? उसने स्वदेशी का व्रत ले लिया। अपनी मनोभावना को व्यक्त करते हुये उसने एक जगह लिखा है—

"एक चौथाई रामकृष्ण परमहंस, एक चौथाई रवीन्द्रनाथ और एक चौथाई गांधी—यही मेरे आदर्श हैं। रामकृष्ण की भक्ति, रवीन्द्र की कवि वृत्ति और गांधी का सेवाभाव—इन्हीं का थोड़ा-बहुत मिश्रण मुझ में हुआ है। मेरी मात्र तीन इच्छायें हैं—मेरा हृदय भक्ति और सभी लोगों के प्रेम से भरा हो, ओठों पर एकाध मधुर गीत की गुनगुनाहट हो, और मेरे हाथ थोड़ा-बहुत सेवाकार्य में लगे हों। इन तीन इच्छाओं की यदि पूर्ति हो जाती है, तो मुझे बहुत संतोष मिलेगा। इसके लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहे।

महाविद्यालय में एक जिज्ञासु, कष्टों को झेलने वाले तथा सहनशील,

विद्यार्थी के रूप में साने प्रसिद्ध थे। संस्कृत और मराठी विषय लेकर उन्होंने बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। इसी अवधि में उन्होंने लोक-हितवादी गोपाल हरी देशमुख और भारत सेवक गोपाल कृष्ण गोखले का जीवन चरित्र लिखा। इससे उनका एक सामाजिक दृष्टिकोण बन गया। बी० ए० करने के पश्चात् दर्शन विषय लेकर एम० ए० करने का निश्चय किया। एक वर्ष तक पूना में पढ़ाई की। दूसरे वर्ष अमलनेर के तत्वज्ञान मन्दिर में साने भर्ती हुये।

अमलनेर का तत्वज्ञान मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था। यह बहुत सुन्दर स्थान था। स्वच्छ खुली जगह, अभ्यास के लिए उत्तम पुस्तकालय और सभी विषयों के विशेषज्ञ पंडित अध्यापक यहां थे। लेकिन साने का मन यहां पूरी तरह नहीं लग रहा था। उन्हें सगुण और साकार तत्वज्ञान से लगाव था। उन्होंने पाया कि आसपास रहने वाले समाज से इसका कुछ भी सम्बन्ध न था। आसपास के समाज में अन्याय, दासता, विषमता, दरिद्रता, द्वेष, ईर्ष्या, अज्ञान, अंधश्रद्धा आदि के विषय में जानकारी रखते हुये भी तत्वचिन्तक निश्चिन्त थे।

साने को इसका बड़ा दुख था। उन्होंने कहा है—"हमारा आदर्श क्या पत्थर की तरह जड़ है? अपने दुख से दुखी और अपने सुख से सुखी मनुष्य हो— यह तो समझ में आने वाली बात है, किन्तु सामाजिक दुख को देखकर हमारे मन में सम्वेदना ही न हो, मनुष्य का हृदय इतना निर्लिप्त हो— क्या यही आदर्श है? इस प्रकार के तत्वज्ञान को स्टोन फिलोसफी अर्थात् 'पत्थर का तत्वज्ञान' कहा जा सकता है। विवेकानन्द, रामतीर्थ आदि का ज्ञान तो जीवन को कृतार्थ करने वाला तत्वज्ञान है। लोकमान्य तिलक के कर्मयोग का दर्शन भी तो जीवन को कृतार्थ करने वाला दर्शन है। लेकिन इस तत्वज्ञान के मन्दिर में ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा था।

इसके विपरीत पास के छात्रालय युक्त विद्यालय में आनन्द ही आनन्द देखने को मिल रहा था। निष्ठावान और राष्ट्रीय भावनाओं से युक्त शिक्षकों का झुंड का झुंड वहां था। उमंग भरा खिलता जीवन वहां था। साने जी का मन उधर आकृष्ट होने लगा।

साने ने किसी तरह एक वर्ष वहां बिताया। एम. ए. की परीक्षा दी। विद्यालय के हरिभाऊ मोहनी जैसे शिक्षकों की हार्दिक इच्छा थी कि साने जैसा संवेदनशील शिक्षक उनके विद्यालय में आये। उन्होंने साने को इस कार्य के लिए आमंत्रित किया। तत्वचिन्तक साने अब 'साने गुरु जी' के नाम से माध्यमिक पाठशाला में दाखिल हुये। उनकी पढ़ाने की शैली अद्भुत थी। अपने को भूल कर वे सिखाते और अपने को भूल कर विद्यार्थी सीखते।

पढ़ाते समय उन्हें ऐसा लगता था कि पीरियड समाप्ति का घंटा कभी न बजे।

पाठशाला से जुड़ा हुआ एक छात्रालय था। दुर्भाग्य से उसकी तरफ कोई ज्यादा ध्यान नहीं देता था। यह बात साने गुरु जी के ध्यान में आई। और उन्होंने अपना मन उस छात्रालय में लगाया। यह छात्रालय अनौपचारिक शिक्षा देने का केन्द्र था। साने गुरु जी ने इस छात्रालय का सूत्र अपने हाथ में लिया। धीरे-धीरे वहां की स्थिति बदलने लगी। पहले तो यह छात्रालय अंडमान समझा जाता था, लेकिन साने गुरु जी के हाथों यह 'आनन्दवन' बन गया। क्योंकि यहां वात्सल्य रस की फुहार पड़ने लगी थी और बालकों के हृदय प्रेम की रस-धार में निमज्जित होने लगे थे।

पाठशाला में पढ़ते समय बच्चे केवल पढ़ते ही हैं—इतना ही तो नहीं होता। शिक्षक केवल अपना विषय ही सिखाये- यह भी उचित नहीं है। शिक्षक तो विषय के बहाने विद्यार्थियों के निकट पहुंचता है। शिक्षक केवल जबानी शिक्षा दे—इसे कैसे उचित कहा जायगा? शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थी को नया संस्कार मिले, तभी उसकी भावनाओं को जगाया जा सकता है। इसके लिए साने गुरु ने स्कूल में और मुख्य रूप से छात्रालय में अनेक नये उपक्रम शुरू किये। ऐसा करते समय उनकी मां का चेहरा उनकी आंखों के सामने उपस्थित हो जाता था। उन्हें बार-बार याद आता कि उनकी मां ने अपने बच्चों को सुसंस्कृत बनाने के लिए क्या-क्या किया था। साने गुरु अपने मन में यह सोचने लगते कि क्या मैं स्वयं ऐसा नहीं कर सकता?

साने गुरु ने 'छात्रालय दैनिक' नाम से हस्तलिखित पत्र शुरू किया। उसको पढ़ने के लिए लड़के टूट पड़ते थे। उस हस्तलिखित पत्र में कभी कोई सद्-विचार होता, तो कभी किसी महापुरुष का जीवनचरित्र होता। उस युग की प्रचलित समस्याओं पर परामर्श होता, तो कभी एकाध सुन्दर-सी कविता होती, अथवा सिर्फ मनोरंजन के लिए एकाध चुटकुला होता। बालकों के विचार जगत को पल्लवित करने के लिए इससे बड़ी प्रेरणा मिली। कुछ विद्यार्थियों के गलत कामों के प्रति इसमें नाराजगी भी व्यक्त होती थी।

छात्रालय से बच्चे जब स्कूल में जाते, तब साने गुरु एकाध बार वहां चक्कर लगा आते। वे हर वस्तु को बड़ी सफाई के साथ रखते। कभी किसी बच्चे के कपड़े इधर-उधर बिखरे पड़े होते, या किताबें और कापियां यहां-वहां फैली होतीं, या कभी कमरे में झाड़ू न लगाई गई होती, या लालटेन साफ न की गई होती, तो साने गुरु चुपचाप उनका यह सारा काम कर डालते थे।

लड़कों को यह सब बड़ा अनोखा लगता। जब लड़कों को इस बात का पता चला, तो वे नाराज हुये। साने गुरु से कहते—"आप हम सब को लज्जित

करने के लिए ऐसा करते हैं।

साने गुरु उनको समझाते—"मां क्या अपने बच्चों को लज्जित करने के लिए यह सब करती है ? उससे वह सब किये बिना रहा ही नहीं जाता। तुम्हें मालूम है—स्वामी रामतीर्थ को जब उनकी चप्पल चुभने लगती थी, तब वे कहते थे कि यह तेल मांग रही है। यह सारी सृष्टि इसी प्रकार हमसे कुछ न कुछ कहती रहती है। पेड़ और झाड़ियां, फूल और पत्तियां आदि, आकाश के रंग, नाना प्रकार की गन्ध सब हमसे इसी प्रकार कुछ कहते रहते हैं। उनकी भावनाओं को हमें समझना चाहिये।"

यह सब सुन कर बच्चों का क्रोध शान्त हो जाता। उनके चेहरे खिल उठते।

साने गुरु बच्चों के लिए बहुत कुछ करना चाहते थे, क्योंकि उनकी दृष्टि में बालक ही भगवान हैं। बच्चे ही राष्ट्र की मूल्यवान धरोहर हैं।

छात्रालय में आये दिन नये-नये कार्यक्रम हुआ करते थे। छात्रालय का जन्मोत्सव मनाया गया।

बीती निशा हंस पड़ी प्राची
नभ में दिनमणि-प्रभा बरसती।
खुलती झुलती मदमाती ये
लाखों कलियां सहज विहंसती।।

अर्धमुखी देवार्चन रत ज्यों
नव दीपक का शुचि विलास ले।
बस वैसे ही मन यह मेरा
नव प्रकाश ले, नव विकास ले।।

जीवन कली खिले कैसे ही
अन्तराल की यह अभिलाषा।
हे भगवान पूर्ण हो सत्वर
मेरे मन की संचित आशा।।

साने गुरु के कारण छात्रालय का पूरा वातावरण ही बदल गया। प्रातःकाल जिन बच्चों को पहले डांट कर उठाया जाता था, उन्हें अब 'जागिये रघुनाथ कुंअर' अथवा 'राजा बेटे उठो मेरे लाल' ऐसे प्रेम भरे गीतों से जगाया जाने लगा। सारा वातावरण निर्मल हो गया। प्रसन्नता ही प्रसन्नता नजर आने लगी। आसपास की प्रवृत्ति भी हरी-भरी हो उठी।

और वह भावनापूर्ण एक घटना। स्कूल का वह नौकर गोपाल। गोपाल छात्रालय का एक अंग था। वह बीमार पड़ा। बच्चों ने बड़े मनोयोग से उसकी सेवा की, सुश्रूषा की। अपनेपन की भावना को बढ़ाना ही तो सच्चा संस्कार है। साने गुरु ऐसे ही वातावरण का निर्माण कर रहे थे, जिससे बच्चों के जीवन में सहज ही संस्कारों की सुगन्ध भर जावे।

परिणाम सामने था। स्कूल के बच्चों और गांव के बच्चों की तुलना में छात्रालय के बच्चे कुछ विशेष ही दिखाई देते थे। महापुरुषों के साथ रहने का यही तो परिणाम होता है। साने गुरु के सम्पर्क में आने के कारण विलास प्रिय विद्यार्थी त्यागी, उच्छृंखल विद्यार्थी संयमी, ध्येय भ्रष्ट विद्यार्थी लक्ष्य प्रवण, निराश विद्यार्थी आशावान, आलसी विद्यार्थी कर्मोपासक बन गये। इस प्रकार सद्गुणों की अपूर्व फुलवारी वहां फूलने लगी।

4. स्कूल से जेल तक

संवेदनशील और विवेकी बनने का अर्थ है सुसंस्कृत बनना। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य मनुष्य को सुसंस्कृत बनाना है। कुछ लोग अपने व्यक्तिगत जीवन में सहृदय और विवेकी होते हैं, किन्तु व्यवहार में वैसे नहीं। वे संवेदनशील और विवेकी दिखाई पड़ते हैं किन्तु उनके व्यक्तिगत जीवन में वैसा कुछ दिखाई नहीं देता। दोनों में सन्तुलन होना चाहिये। यह सन्तुलन रखना शिक्षा का काम है। साने गुरु की सारी चेष्टा इसी सन्तुलन को कायम रखने की थी। देशभक्ति के व्यक्त स्वरूप का अर्थ है—देश के दीन-दलितों को उठाना। स्वदेशी के संकल्प में यही व्यक्त होता है।

महाविद्यालय में पढ़ते समय ही साने गुरु ने स्वदेशी व्रत को अपना लिया था। स्वदेशी व्रत का अधिक उन्नत स्वरूप अर्थात् खादी। सामान्य से सामान्य व्यक्ति के लिए स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रति आस्था प्रकट करने का साधन—खादी। साने गुरु ने खादी पहनना शुरू किया। विद्यार्थी भी खादी पहनने लगे। साने गुरु गांवों में खादी बेचने के लिए घूमने लगे। गांव के किन्हीं व्यक्तियों को यह बात अच्छी नहीं लगी। विदेशी कपड़ा पहनने वालों की निन्दा होने लगी।

एक जज के लड़के के विदेशी कपड़ों की निन्दा हुई। जज साहब को गुस्सा आ गया, तब साने गुरु ने निर्भय होकर उनसे कहा—"शिक्षा का मात्र काम क्या पुस्तक पढ़ाना है। विद्यार्थियों में स्वयं विचार करने की शक्ति पैदा होनी चाहिये।"

छात्रालय में न रहने वाले विद्यार्थी भी छात्रालय में घूमते रहते थे। इतना ही नहीं, छात्रालय की दैनिक पत्रिका को भी वे पढ़ते थे। जो विद्यार्थी स्कूल छोड़कर चले गये थे, वे भी स्कूल से सम्बन्ध और सम्पर्क बनाये रखने की इच्छा रखते थे।

इसलिए 'विद्यार्थी' नाम की एक छपी मासिक पत्रिका प्रदर्शित करने का निश्चय किया गया। नवम्बर 1928 में इसका पहला अंक प्रकाशित हुआ और इस तरह स्कूल का क्षेत्र एकदम विशाल बन गया। विद्यार्थियों के लिए निकाली

गई इस पत्रिका को विद्यार्थियों के घर वाले भी शौक से पढ़ने लगे। अनायास बड़ों का भी ज्ञान-वर्धन होने लगा।

'छात्रालय दैनिक' का ही व्यापक रूप यह मासिक पत्रिका थी। महापुरुषों के जीवन चरित्र विशेषता भरे रहते थे। कल्पना की अपेक्षा सत्य की उड़ान श्रेष्ठ होती है। साने गुरु ने ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, आशुतोष मुकर्जी, चित्त-रंजन दास, रवीन्द्रनाथ, शिशिर कुमार घोष, इतिहासाचार्य राजवाड़े फ्रेंकलिन जैसे प्रसिद्ध व्यक्तियों का परिचय विद्यार्थियों के लिए सरस वाणी में लिखा।

महात्मा गांधी उन दिनों 'नवजीवन' पत्रिका चलाते थे; उनके विचारों का परिचय भी साने गुरु पत्रिका में देते थे।

देश के इतिहास के तेजस्वी और पराक्रमी पृष्ठ लिखे गये। साने गुरु उस जीवित इतिहास को विद्यार्थियों को सुनाते थे, साने गुरु इस दिशा में अनेक प्रकार से प्रयत्न करते थे, जिससे युवक वर्ग इतिहास के मात्र गायक न बनकर नायक बनें—ऐसी इच्छा उनमें जागृत हो। जो इतिहास बन रहा था, उसकी जानकारी साने गुरु जी विद्यार्थियों को देते थे।

याद किये हुये पाठों को उत्तर पुस्तक में धड़ाधड़ लिखने के लिए यह इतिहास नहीं था। जीवन की परीक्षा देने की हिम्मत देने वाला यह इतिहास था। उसका प्रभाव पड़ने ही वाला था। जीवन को सोना बनाने वाली कीमिया बनने वाली थी।

राष्ट्र के भविष्य को बनाने वाली कांग्रेस संस्था की स्थापना हुई थी। पंडित नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में रावी नदी के तट पर होने वाला था। साने गुरु जी और उनके विद्यार्थियों की निगाहें उसकी ओर लगी थीं। उनका शरीर मात्र अमलनेर में था, मन लाहौर में था। और वह ऐतिहासिक रात ! 31 दिसंबर 1929। रात्रि के बारह बज रहे थे। प्रतिबन्धित नहीं, वरन सम्पूर्ण स्वतंत्रता ही अपना ध्येय है—ऐसी घोषणा की गई, और नया वर्ष प्रारंभ हुआ।

देश के इतिहास का नया अध्याय, तेजस्वी अध्याय, स्मरणनीय अध्याय लिखा जाने लगा। 26 जनवरी 1930, झंडावन्दन का मासिक दिवस, रविवार का दिन। इस दिन को 'स्वतंत्रता दिवस' मनाना निश्चित किया गया। उस दिन स्वतंत्रता की प्रतिज्ञा सामूहिक रूप से करनी थी। दृढ़ संकल्प में ही तो सिद्धि का निवास है। साने गुरु जी इस कल्पना से अत्यधिक रोमांचित हो उठे। छात्रालय के विद्यार्थियों को इकट्ठा करके वे विभोर होकर गीत गाने लगे, नाचने लगे। उन्हें ऐसा लगने लगा कि स्वतंत्र भारत की कल्पना से सम्पूर्ण चर-अचर चैतन्य की वर्षा कर रहा है।

मंगल मंगल शत् शत् मंगल
पावन दिन यह धन्य अहा !
भारत अब आजाद हमारा
जय बोलो जय बोलो रे !
दिशा-दिशा में हर्ष भरा है
कितनी निर्मल कितनी उज्ज्वल
भारत अब आजाद हुआ है
जय बोलो जय बोलो रे !
पावन आज है अतिशय पावन
कारण क्या बतलाओ तो
भारत अब आजाद हुआ है
जय बोलो, जय बोलो रे !
सृष्टि नाचती, विश्व हंस रहा
मोद भरे चर-अचर सभी
भारत हुआ स्वतन्त्र इसलिए
जय बोलो, जय बोलो रे !
मिटा दैन्य सब, दुख गल गया
कलह-द्वेष सब दूर गये हैं
नयी सृष्टि का उदय हुआ है
जय बोलो, जय बोलो रे !
हाथ परस्पर पकड़ें या तो
उंगली पकड़ नाचे सब
शान्ति गीत गा मातृ भूमि की
जय बोलो, जय बोलो रे !
झूम-झूम कर नाचें गायें
अमित हर्ष के अश्रु गिरायें
जय-जय भारत, प्रियतम भारत
जय बोलो, जय बोलो रे ।।

इसके बाद यह दिवस व्यक्ति-व्यक्ति में चैतन्य संचार करने का दिन बन गया। नमक-कर रद्द कराने के लिए गांधीजी ने सत्याग्रह का बिगुल बजाया। उसके लिए साबरमती आश्रम से निकल कर दांडी स्थान तक वे पैदल जाने वाले थे। साने गुरू के स्कूल के एक सहकर्मी श्री हरिभाऊ मोहिनी के नेतृत्व

में सत्याग्रहियों की पहली टोली तैयार हुई। 13 मार्च 1930 के दिन दांडी-यात्रा शुरू हुई। साने गुरु के हृदयोद्‌गार शब्द रूप धारण कर बहने लगे--

हम स्वतन्त्रता के सैनिक हैं
सुखी बनायें भारत माता !
रहे धैर्य की ढाल उमंग
और त्याग का भगवा रंग
निश्चय का डंडा हो कर में
सुखी बनावें भारत माता !
शुचि समानता, चिर स्वतन्त्रता
से चिन्हित है दिव्य पताका
सदा लहराता रहे गगन में
सुखी बनावें भारत माता !
दुर्दिन को हम दूर भगायें
और मृत्यु पर विजय मनायें
त्रिभुवन यश की गाथा गायें
सुखी बनावें भारत माता !
जो असत्य-अन्याय, हटायें
व्यर्थ रूढ़ियां दूर भगायें
रहे कहीं भी नहीं बुराई
सुखी बनावें भारत माता !
दलित न होवें और पद्दलित
झोंपड़ियों में मोद भर उठे
जल्दी उनको मुक्ति दिलायें
सुखी बनावें भारत माता !
भारत को हम करें स्वतंत्र
मन बुद्धि भी बने स्वतंत्र
स्थापित जनतंत्र करे हम
सुखी बनावें भारत माता !

स्वतन्त्रता का यह अर्थ कदापि नहीं कि गोरे साहब चले जायं और काले साहब आ जायं। इसकी स्पष्ट अनुभूति साने गुरू के इस गीत में हुई है। इस गीत में यह स्पष्ट व्यक्त हुआ है कि स्वतंत्रता केवल मुट्ठी भर लोगों के लिए

नहीं है, आम जनता के लिए हैं, विशेषतया गरीब-दलितों के लिए है।

स्वतंत्रता प्राप्त करने के पश्चात जनतंत्र की स्थापना करके स्वराज्य और सुराज्य में उसे रुपांतर करने का दिशा-संकेत इस गीत में स्पष्ट किया गया है। हजारों युवकों के हृदय में इस गीत के बोलों से स्वतंत्रता के प्रति चेतना जागृत हुई। साने गुरु भी स्वयं चेतना के पुंज बने। अन्त में उन्होंने मन ही मन कुछ निश्चय किया।

स्कूल के वर्ष का काम पूरा किया और 29 अप्रैल 1930 के दिन स्कूल और छात्रालय—दोनों का ही काम साने गुरु ने छोड़ दिया। स्कूल से हटते समय उनका हृदय भर आया। वे स्कूल में छ साल रहे और ये छ साल स्कूल के लिए वरदान सिद्ध हुए। विद्यार्थियों के जीवन को विकसित करते-करते इस माली का भी जीवन विकसित हो उठा।

ऐसी ही एक पुरानी कहानी है।

एक बड़े व्यापारी के यहां माल खरीदने के लिए अपने-अपने गधे लेकर कुछ व्यापारी आये। माल खरीद करते-करते दिन बीत गया। व्यापारी अपने गांव की ओर जल्दी-जल्दी चल दिये। घने जंगल को पारकर ही उन्हें अपने गांव पहुंचना था। उस जंगल में लुटेरों का डर रहता था। इसलिए जल्दी-जल्दी चलने के लिए वे गधों को मारने लगे।

गधों ने व्यापारी से पूछा—"सरपट चलने के लिए आप क्यों कह रहे हैं ?"

व्यापारी ने कहा—"अरे गधो ! तुम इतना क्यों नही समझते कि रास्ता घने जंगल के बीच होकर जाता है। आधी रात का समय। जंगल से गुजरते समय डाकू आ गये तो ?"

गधों ने कहा—"डाकू क्या करेंगे ? क्या हमारे ऊपर और बोझा लादेंगे ?"

व्यापारी ने कहा—"तुम बिल्कुल गधे हो। और बोझा लाद सकते तो हमीं क्यों न लाद देते ?"

गधे बोले—"तब क्या डाकू हमको भूखा रखेंगे ?"

व्यापारी ने कहा—"जितना भूखा हम तुम्हें रख सकते हैं, उतना तो हम रखते ही हैं ?"

गधे बोले—"इसका मतलब यह कि आप जितना हमारे लिए करते हैं उससे अधिक बुरा डाकू नहीं कर सकते।"

व्यापारी ने कहा—"बिल्कुल ठीक। गधों से हम अच्छा व्यवहार करें ? क्या हम मूर्ख हैं ?"

बघे बोले—"तब तुम्हीं भागो ! भागने से या न भागने से हमारी परि-स्थिति में कोई अन्तर आने वाला नहीं, तब हम क्यों भागें। तुम ही भागो।"

यह बात स्पष्ट थी कि सामान्य लोगों को यदि यह बात ज्ञात हो जाये, कि स्वतंत्र होने के पश्चात उनकी स्थिति सुधर जावेगी, तो वे सब स्वतंत्रता संग्राम में सहयोग देने के लिए तैयार हो जावेंगे। साने गुरु के इस गीत से उन्हें इस प्रकार का आश्वासन मिला था। इसलिए उसके प्रचार के लिए साने गुरु ने दौरा करना शुरू किया। उनके भाषणों को सुनकर गांवों के स्त्री-पुरुषों का सहयोग मिलने लगा।

सत्याग्रह आंदोलन का संदेश देते हुए साने गुरु वायु की भांति घूम रहे थे। पुलिस और उनका भाग-पकड़ का खेल शुरू हुआ। अन्त में साने गुरु को गिरफ्तार किया गया। जलगांव जिला के एरंडोल तहसील के गांव में मुकदमा चला। 17 मई 1930 को 15 माह का कठोर दण्ड और 200 रुपए का जुर्माना हुआ। उसे स्वीकार कर साने गुरु ने धूलिया की जेल में प्रवेश किया। उनके मुख मंडल पर उस समय अपूर्व संतोष प्रकट हो रहा था।

स्वतंत्रता के सैनिक की पदवी उन्हें सुशोभित कर रही थी।

5. नया अनुभव : नयी कल्पना

न्यायाधीश के फैसले के मुताबिक साने गुरु 'ब' वर्ग के कैदी थे तो भी उन्होंने सर्वसाधारण सत्याग्रहियों की भांति 'क' वर्ग के कैदी बन कर रहना पसन्द किया। जेल के अधिकारियों के लिए यह सब कुछ नया-सा था। एक ओर ऐसे अधिकांश कैदी थे, जो जेल के नियमों को ताक पर रख कर रिश्वत देकर अथवा अन्य गलत रास्ते अपनाकर जेल में रहते हुए आरामतलबी के सब सामान प्राप्त करने का अखंड प्रयत्न करते थे, वहां दूसरी ओर नियमानुसार मिलने वाली सुविधाओं को भी ठुकराकर रहने वाले साने गुरु थे। उनके इस अनोखे व्यवहार का एक दूसरे प्रकार ही प्रभाव जेल-अधिकारियों पर पड़ा। वे साने गुरु से कुछ डरने लगे। युवा कैदी हमेशा साने गुरु के आसपास बने रहते थे। जेल के अधिकारियों ने यह भी भांप लिया था कि साने गुरु के मात्र एक इशारे पर वे युवक सब कुछ कर सकते थे। इस भय से बचने के लिए जेल अधिकारियों ने एक मार्ग निकाला। जेल में सत्याग्रहियों की संख्या बहुत अधिक हो गई थी। इस आधार पर कैदियों में से कुछ को मद्रास प्रांत के त्रिचनापल्ली जेल में भेजने का निश्चय किया। उस समय बड़ी तत्परता से साने गुरु को भेजने के लिए चुना गया।

धुलिया जेल से साने गुरु के चले जाने से युवा सत्याग्रहियों को बड़ा सूना-सूना लगने लगा। उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा, मानो किसी ने उनके ऊपर से माता की छत्रछाया हटा दी हो। साने गुरु के साथ अनेक मराठी भाषी सत्याग्रही त्रिचनापल्ली भेजे गये थे। उनमें एक थे आचार्य भागवत। साने गुरु ने वहां भी अपना स्थान बना लिया। वहां भी कहानियां सुनाने का उनका काम चालू हो गया। भावनाओं का सागर उनके हृदय में लहराता रहता था। उनके ओठ अनजाने ही कुछ गुनगुनाने लगते थे। बहुत देर तक वे कविता की रचना मन में ही करते रहते थे। फिर उसे लिख लेते थे। आचार्य भागवत जैसा सहृदय श्रोतावाचक उन्हें मिल गया था। साने गुरु के मन में दो भावनायें सदा रहती थीं—एक प्रभु भक्ति की, दूसरी देश प्रेम की। साने गुरु की सभी रचनायें इन्हीं भावनाओं से ओतप्रोत है। साने गुरु ने उन दिनों एक सुन्दर

प्रार्थना गीत लिखा था—

> उच्चारित हो यही प्रार्थना सदा अधर से ।
> नीच काम कोई न कभी हो मेरे कर से ।।
> श्रद्धा सहित रहे उर में प्रभु स्मृति तेरी ।
> फिर न शेष रह जावे कोई चिन्ता मेरी ।।

जिन लोगों ने इस गीत को सुना, गीत में व्यक्त की गई तीव्र भावना को सभी ने अनुभव किया। इतना ही नहीं, अनेक व्यक्तियों ने ऐसा अनुभव किया, मानो उनकी ही आन्तरिक भावना को साने गुरु ने शब्द दे दिये हैं। यह प्रार्थना गीत उनकी जीभ पर चढ़ गया।

साने गुरु को मराठी, अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, बंगला आदि सभी भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। त्रिचनापल्ली जेल में पहुंचने से उन्हें एक और लाभ मिला। दक्षिण भारत के सत्याग्रही तमिल, तेलगु, कन्नड़ और मलयालम भाषा में आपस में बातचीत करते थे। साने गुरु उनसे मिलते-जुलते। उन्होंने कन्नड़ लिपि सीखने का प्रयत्न किया। तमिल सत्याग्रही मित्रों के साथ साने गुरु बातचीत करते। कभी उनकी कहानियां सुनते तो कभी उन्हें अपनी कहानियां सुनाते। कभी उर्दू के प्रसिद्ध शायर इकबाल की रचनायें पढ़ते। उन्हें ऐसा भान होने लगा कि यद्यपि भारत की विभिन्न भाषाओं में विभिदता है, किन्तु इस भिन्नता के भीतर विचारों और भावनाओं की एकता विद्यमान है। इस एकता की भावना को और अधिक कैसे दृढ़ किया जाय—यह विचार उनके मन में सदा चक्कर लगाया करता था।

अमलनेर में साने गुरु ने छ साल बिताये थे। यहां भी अनेक भाषा-भाषियों के सम्पर्क में वे आये थे। वे सोचते कि वहां की पाठशाला में विविध भाषा-भाषी शिक्षक नियुक्त किए जायें तो कैसा ?

वेंकटाचल नामक एक मित्र साने गुरु को वहां मिले थे। उन्हें दक्षिण की सब भाषायें आती थीं। ऐसे ही व्यक्तियों की यदि नियुक्ति की जाय, तो कितना अच्छा हो। यदि ऐसा हो, तो विशाल भारत का संस्कार बच्चों पर बचपन से ही पड़ेगा। साने गुरु अपने इस विचार को पत्रों द्वारा अपने मित्रों के सामने रखते थे। उनके मन में भारतीय एकता का भाव सदा बना रहता था। कवि सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'विश्वभारती' नामक संस्था की स्थापना की थी। 'यंत्र विश्वे भवत्येक नीडम्'—मंत्र दिया। अर्थात यह वह स्थान है, जिसे सारे संसार का घर कहा जा सकता है। साने गुरु चाहते थे कि कुछ

ऐसी व्यवस्था हो जावे कि सारा भारत एक घर जैसा लगने लगे। तो कितना अच्छा हो। त्रिचनापल्ली जेल में रहते यह विचार पैदा हुआ, इसलिए वे सोचते थे कि सरकार ने उन्हें वहां भेजकर अनजाने ही एक अच्छा मौका उन्हें दिया है।

अय्यर नामक एक राजनैतिक कैदी त्रिचनापल्ली जेल में थे। विश्वयुद्ध के समय विदेशों से हथियार लाकर देश को स्वतंत्र करने की योजना बनाने वालों के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। क्रान्तिकारियों की वह योजना पूरी नहीं हो पाई। वे पकड़े गये और उन्हें लम्बी सजा भुगतनी पड़ी।

अय्यर साहब को अपनी तमिल भाषा का गहरा ज्ञान था। और उसका अभिमान भी। तमिलनाडु में हजारों वर्ष पहले वल्लुवर नाम का एक जुलाहा हुआ था। उसने अपने उच्च ज्ञान-विवेक के आधार पर समाज को बहुत अच्छी शिक्षा दी थी। इसलिए लोग उन्हें तिरुवल्लुवर अर्थात आदरणीय वल्लुवर नाम से सम्बोधित करते थे। तिरुवल्लुवर की वह वाणी 'कुरल' नाम से संग्रहीत की गई। उस संग्रह को भी आदर भाव से 'तिरुकुरल' कहते हैं। शाश्वत शिक्षा देने वाली उस पुस्तक का परिचय साने गुरु को अय्यर ने करा दिया था।

इस प्रसिद्ध ग्रंथ का अंग्रेजी में अनुवाद हो चुका है। इस ग्रंथ के मूल पाठ को पढ़ने में तमिल सत्याग्रही साने गुरु की सहायता करते थे। इस महान ग्रंथ का मराठी में अनुवाद करने का काम साने गुरु ने जेल में ही प्रारम्भ कर दिया। साहित्य का यदि ऐसा प्रवाह एक भाषा से दूसरी भाषा में होने लगे तो एक भाषा का साहित्य दूसरी भाषा के साहित्य को समृद्ध बनायेगा। साने गुरु सोचते थे कि सत्याग्रह ने हम सब को एक अच्छा मौका दिया है। इस मौके का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिए। यदि सारे देश में जगह-जगह इस प्रकार के प्रयत्न शुरू हुए, तो ब्रिटिश साम्राज्य वादियों की 'बांटो और राज्य करो' की नीति का भंडाफोड़ हो जावेगा।

चराचर सृष्टि से बातचीत करने का साने गुरु की सदा इच्छा रहती थी। वे सदा सोचते थे कि सृष्टि रूपी मां कितनी ममतामय और दयालु है। उसका सदा प्रयत्न यह रहता है कि उसके बच्चे सदा खिलखिला कर हंसते रहें। जब-जब यह विचार आता, साने गुरु का जी भर आता था। सृष्टि रूपी मां की ममता को यदि लोग समझ पाते, तो वे अपने मन की गलत धारणाओं को दूर कर सकते हैं। साने गुरु ने अपनी इस भावना को अपने एक गीत में यों व्यक्त किया है—

वायु कान में कहती धीरे,
मैं गाऊंगी बढ़िया गीत,
हर कर ताप शांति दूंगी मैं,
हंस रे मेरे लाल !
चिड़िया आकर नाच-कूद कर,
मैं बतलाऊं क्या कहती है,
चें-चें कर चिन्ता हर लूंगी,
हंस रे मेरे लाल !
हरे भरे ये वृक्ष झूम कर,
क्या कहते हैं धीरे-धीरे,
छाया और फल-फल देंगे,
हंस रे मेरे लाल !
विहंस-विहंस कर फूल कह रहे,
देंगे हम तुम सबको प्रेम,
रंग दिखा कर सौरभ देंगे,
हंस रे मेरे लाल !
नभ कहता है रवि शीश तारों,
की किरणों का सुन्दर ह्रास,
देगा तुमको दिव्य प्रकाश,
हंस रे मेरे लाल !
पानी बरसा धरा हंस पड़ी,
रह-रह मेघ कह रहे मुझसे,
देखो मेरे सभी नद-नारे,
हंस रे मेरे लाल !
हरी घास के कोमल अंकुर,
चुपके से कुछ कहते मुझसे,
आओ-आओ मुझ पर लेटो,
हंस रे मेरे लाल !
जाता जिधर देखता यह ही,
यही सुनाई भी पड़ता है,
कभी न रोओ, कभी न रुठो,
हंस रे मेरे लाल !!

सृष्टि में मनुष्य को आनन्द देने वाली बहुत-सी बातें हैं, फिर भी मनुष्य दुखी रहता है। ऐसा क्यों है ? यह प्रश्न कभी-कभी साने गुरु को परेशान करता था। जेल में जो सत्याग्रही पहुंचे हैं, वे तो समाज के महत्वपूर्ण लोग हैं। साने गुरु उनसे बहुत बड़ी अपेक्षा रखते थे। साने गुरु के विचार से सत्याग्रही दूसरों के हित की बात सोचने वाला होता है, दूसरों के प्रति प्रेम भाव रखने वाला होता है। ऐसे सत्याग्रही जब दूसरों के साथ कठोर व्यवहार करते तो उसे देखकर साने गुरु को बहुत बुरा लगता था। जेल में अपेक्षा से अधिक कैदियों की भीड़ हो गई थी, इसलिए सब चीजों की कमी पड़ जाती थी।

जेल के पाखाने डब्बे वाले थे। इतने सारे कैदियों का मल-मूत्र उनमें समाता न था, इसलिए वह बहने लगता था। इतना होने पर भी कोई इसकी शिकायत नहीं करता।

अंग्रेज सरकार ने जेल में भी छुआछूत की भावना को चालू रखा था। सफाई का काम अछूत कैदियों को सौंपा जाता था। मलमूत्र से भरे उन डब्बों को उठाने में उन्हें कितना कष्ट होता होगा, इसकी चिन्ता किसी को न थी। अमलनेर के तत्वज्ञान मन्दिर में रहने वालों जैसा सब व्यवहार करते थे। साने गुरु ने संडास सफाई के काम में अपना सहयोग देना उचित समझा। गांधीजी के आश्रम में अत्यन्त नीच समझे जाने वाले कामों को गांधीजी स्वयं करते थे और आश्रम में रहने वालों से भी करवाते थे।

सत्याग्रह सिद्धान्त में समाज कल्याण का कोई भी काम तुच्छ नहीं है। सत्याग्रही आश्रमों में एक नियम अपनाया गया था। चूंकि रसोई का और उसकी सफाई का काम नीचा समझा जाता था। इसलिए आश्रमों में इन कामों का करना सबके लिए अनिवार्य बनाया गया था। साने गुरु इस प्रकार का अनुशासन लाने का भरसक प्रयत्न करते थे। जिस तरह शब्द प्रबोधक होता है, उसी प्रकार कर्म भी प्रबोधक होता है।

जेल में जब यह कर्मयोग चल रहा था, उसी समय गांधीजी और वायसराय अर्विन में समझौता हो गया। कैसी विचित्र और बड़ी घटना थी। जिस ब्रिटिश साम्राज्य के बारे में कहा जाता है कि उसके राज्य में कभी सूरज नहीं डूबता, उसका प्रतिनिधि समझौता करता है फटे कपड़े पहनने वाले फकीर गांधी से। इस समझौते के आधार पर एक-एक करके सत्याग्रही जेलों से छोड़े जाने लगे। साने गुरुजी को भी छोड़ दिया गया। एक-दूसरे से विदा होते समय सब की आंखें गीली थीं। बिछुड़ने का सबको ही दुख था।

साने गुरु नये अनुभवों की गठरी लेकर और नई-नई कल्पनायें मन में संजो कर अपने कार्यक्षेत्र में आ पहुंचे।

6. जेल के वे दिन

त्रिचनापल्ली जेल से छूट कर साने गुरु खानदेश वापस आये और जनता-शिक्षण के काम में लग गये। खानदेश के सत्याग्रहियों का एक सम्मेलन जलगांव के निकट आसोदा गांव में हो रहा था। विनोबा जी इस सम्मेलन के मुख्य अतिथि थे। विनोबा जी के मूलगामी विचार, उन्हें व्यक्त करने का उनका स्पष्ट तरीका और उनकी सादगी का सभी सत्याग्रहियों पर विशेष प्रभाव था। साने गुरु विनोबा के विचारों से एकरस हो गये। वे स्वभाव के संकोची ठहरे। एक तरफ रहने वाले। फिर भी खानदेश के सत्याग्रहियों का साने गुरु के प्रति अनोखा प्रेम था। इसलिए सत्याग्रहियों के लिए जहां एक आकर्षण विनोबा जी का था, वहीं दूसरा आकर्षण साने गुरु का था। गांधी-अरविन समझौता तो हो गया था, फिर भी ऐसा अनुभव किया जा रहा था, मानों आंधी आने से पहले की-सी यह दबदबी है। उसकी आहट बड़े लोगों को हो रही थी और उस दृष्टि से उनकी हलचल चल रही थी। साने गुरु के तूफानी दौरे चल रहे थे।

देश भर में धर पकड़ शुरू हुई। साने गुरु को भी गिरफ्तार किया गया। दो वर्ष की उन्हें सख्त सजा सुनाई गई। सजा काटने के लिए उन्हें धुलिया जेल जाना हुआ। उड़े हुए पक्षी जिस तरह पुनः तालाब पर आ जाते हैं उसी प्रकार धुलिया जेल में सब परिचित मित्र मिल गये। विनोबा जी को भी जलगांव से पकड़ कर लाया गया। विनोबा के आ जाने से जेल का सारा वातावरण ही बदल गया। जेलर ने चक्की पिसवाने की सख्ती का प्रयत्न किया, किन्तु इसका उलटा ही परिणाम निकला। बात बढ़ गई। विनोबा ने बीच-बचाव किया। रोज लगने वाले आटे को पीसना उन्होंने स्वीकार किया। चक्की पीसने वाला एक दल तैयार हुआ। अपनी इच्छा से आटा पीसकर देने वाला एक दल। इस में साने गुरु थे ही। अपने हिस्से का आटा पीसने के बाद वे दूसरों की भी मदद करते थे। वहां भी उनके भक्त युवकों का मेला लगने लगा। राष्ट्रीय शाला के कितने ही शिक्षक और विद्यार्थी वहां थे। वे 'साने सर' कहा करते थे 'सर' का यह सम्बोधन उन्हें अच्छा नहीं लगता था। 'सर' को हटाकर उन्होंने 'गुरु' बना

दिया । अब सभी लोग उन्हें 'साने गुरु जी' के नाम से जानने-पहचानने लगे ।

अपने-अपने कार्य का विवरण देने के पश्चात, वाचन चर्चा, व्याख्यान के रूप में कार्यक्रम शुरू होता । सत्याग्रहियों को शिक्षित करने के लिए वहां तरह-तरह के काम नियोजित होते । नेताओं के ज्ञान को देखकर सत्याग्रही चकित हो जाते थे । अंग्रेजी साहित्य का उल्लेख बार-बार होता था । जो लोग मात्र मराठी भाषा जानते थे, वे यह देखकर खीजते थे ।

एक बार विनोबा जी ने कहा—"भाषा सम्बन्धी अड़चन के कारण किसी को ज्ञान से वंचित नहीं रहना है । सब लोगों को नवीन विचारों से परिचित कराने की दृष्टि से साने गुरु जी जैसे व्यक्तियों का साहित्य मराठी में आना चाहिए ? गीता संस्कृत में होने के कारण अनेक लोग उसके धर्मज्ञान से वंचित रह जाते हैं । यह देखकर विनोबा ने गीता का सरल मराठी में अनुवाद किया और प्यार से उसे 'गीताई' (गीता माता) नाम दिया । गीता पर विनोबा की अपार श्रद्धा । "गीताई मेरी मां है । मैं उसका बच्चा हूं । मुझे गिरता-रोता देखकर वह मुझे उठा लेती है ।" गीता के सम्बन्ध में विनोबा की ऐसी भावना है ।

साने गुरुजी की तरह विनोबा जी भी मां के परम भक्त थे । इसलिए दोनों के हृदय तार उसी समय जुड़ गये थे । साने गुरुजी के हृदय में जब तीव्र भावना उठती थी, वे उसे लिख डालते थे । कभी कथा के रूप में, कभी कविता के रूप में ।

अपने बच्चों को देखकर जैसे मां के चेहरे पर नव निर्माण का आत्मिक सन्तोष दिखाई देता है, वैसा ही भाव उनके चेहरे पर दिखाई देने लगता । बालकों को इस बात का ज्ञान हो चुका था, इसलिए साने गुरु जी के कविता-गीत अनेक मुखों से उच्चारित होते थे । गांधीजी ने अपने एकादश व्रत में शरीर श्रम को स्थान दिया है । स्वयं की इच्छा से स्वीकार किए गए श्रम की बात ही अलग है । इस भाव को व्यक्त करने वाला एक गीत धुलिया जेल में रचा गया, जो विशेष लोकप्रिय बना । यह जो नया मजदूर है, वह दूसरे ही प्रकार का है । वह भगवान का मजदूर है । जो भगवान का मजदूर होता है, वह कभी किसी को दुख नहीं देता । उसके श्रम के मूल्य को रुपये-पैसों में नापा नहीं जा सकता । ऐसा अनोखा यह श्रम और मजदूर है । बाहर की खेती करते-करते वह मन को शुद्ध करने वाली खेती भी करता है—

हम सेवक हैं प्रभु ईश,
सेवक हैं हम सब स्वदेश के,
काम करें भरपूर ।।

खेती कर अन्न उपजावें,
फल-फूलों से धरा सजावें,
हो अकाल भय दूर ।।
उर में दया स्नेह की खेती,
समता की फसलें हैं देती,
सुख छाये भरपूर ।।
मिटे गंदगी बाहर भीतर,
उतरे स्वर्ग इसी पृथ्वी पर,
बदले सारा नूर ।।
दिन भर श्रमकर स्वेद बहायें
रात प्रभु के गुण हम गायें,
भक्ति से भरपूर ।।
मिले कर्म में अति आनंद,
सेवा में तो दिव्यानन्द,
कुछ न और मंजूर ।।

अत्यन्त सरल भाषा में विनोबा जी की गीताई को सुनकर गीता का अच्छा अध्ययन करने की इच्छा सब के मन में पैदा हुई । इसलिए सब ने आग्रह किया कि विनोबा जी गीता की विस्तार से व्याख्या करें। धुलिया जेल में 21 फरवरी से 19 जून 1932 तक लगातार 18 रविवारों पर यह व्याख्या होती रही । यह अत्यन्त अनोखी दावत थी । साने गुरु एक किनारे पर बैठे अत्यन्त ध्यानपूर्वक इस व्याख्या को सुनते और लिखते भी जाते । विनोबा जी की तर्क संगत विवेचना में साने गुरु ने अपने हृदय का सारा मधु उंडेल दिया, इसलिए मूल जितना मीठा था उसकी मिठास और बढ़ गई ।

ज्ञानेश्वर महाराज के गीता भाष्य को लिखकर सच्चिदानन्द बाबा लेखक बन गये, उसी प्रकार विनोबा जी के गीता भाष्य को लिखकर साने गुरु सच्चिदानन्द बाबा बन गये । गीता प्रवचन ऐसी ही एक अपूर्व साहित्यक पुस्तक है । भाषाभेद को पारकर यह पुस्तक सारे भारत में पहुंच चुकी है । इस एक ही पुस्तक ने विनोबा जी और साने गुरु के साहित्य में एक अमिट स्थान बना लिया है । साने गुरु और विनोबा की एक विलक्षण जोड़ी थी । इस सम्बन्ध में विनोबा जी का कथन था—"साने गुरु और मेरा ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि उससे अधिक घनिष्ठ प्रेम सम्बन्ध कैसा होता, मैं नहीं जानता । साने गुरु का स्मरण करते ही मेरी आंखें गीली हो जाती हैं । छः महीने तक

धुलिया जेल में हम लोग एक साथ रहे। गीता पर वहां जो प्रवचन हुए, साने गुरु ने उन्हें ज्यों का त्यों लिख डाला। भारतवर्ष की सभी भाषाओं में उसका अनुवाद हो चुका है। लाखों लोग इन प्रवचनों को पढ़ते हैं। भक्ति मार्ग की शिक्षा लेते हैं और हृदय शुद्धि की दीक्षा लेते हैं। इसका सारा श्रेय साने गुरु को है।

महाराष्ट्र के वारदरी सम्प्रदाय के आदि पुरुष निवृत्तिनाथ ज्ञानदेव आदि के नामों से सभी परिचित हैं। उस सम्प्रदाय के अन्तिम महापुरुष मेरी दृष्टि में साने गुरु है। उन्होंने दीक्षा ग्रहण की थी, या नहीं, मुझे ज्ञात नहीं, लेकिन ऐसे महापुरुष को दीक्षा की आवश्यकता ही नही है।"

अगस्त 1932 में साने गुरु को धूलिया जेल से नासिक जेल भेज दिया गया। एक विशेष भावना के साथ वे नासिक जेल पहुंचे। "नासिक की पवित्र धूलि में मुझे लोटना अच्छा लगता है, क्योंकि वह राम जानकी के चरणों से पावन हो गई है।" यह गीत गुनगुनाते वे वहां पहुंचे। यहां जेलर मस्त था किन्तु साने गुरु ने उसकी कभी चिन्ता नहीं की। यहीं पर साने गुरु ने 'श्याम् की आई' जैसी अपनी अत्यन्त महत्व की पुस्तक केवल चार रातों में लिखकर समाप्त की। यह ग्रंथ मातृ प्रेम का महा मंगल स्रोत है। नासिक जेल में रहते समय साने गुरु ने अनेक प्रकार के साहित्य की रचना की तथा अनेक अनुवाद किये। इस अवधि में गांधीजी के तीन निकटस्थ व्यक्तियों से साने गुरु का परिचय हुआ। जमनालाल बजाज, प्यारेलाल और स्वामी आनन्द।

स्वामी आनन्द ने साने गुरु को भेंट स्मृति के रूप में एक फाउण्टेन पेन दिया। यह पेन गांधीजी के पास था और वारडोली आन्दोलन के समय सरकार से सारा पत्र-व्यवहार इसी पेन के द्वारा गांधीजी ने किया था। साने गुरु ने इस पेन को अपने लिए एक वरदान जैसा ही माना।

साने गुरुजी के जीवन में भावों का वसन्त यहीं आया था। उनका हृदय काव्य रस से भरपूर हो रहा था। कागज पर वे उसे कितना और कैसे उतारें यही प्रश्न उनके सामने रहता था। दिन भर जेल में कठोर श्रम करने के पश्चात रात्रि में जाग कर ही वे लिखते थे।

रवीन्द्रनाथ की 'साधना' नाम की एक अपूर्व पुस्तक है। साने गुरु की यह एक अत्यन्त प्रिय पुस्तक है। बच्चों को वे यह पुस्तक पढ़कर सुनाते थे और उसके अर्थ को समझाते थे। इस पुस्तक का अनुवाद भी साने गुरु ने इसी अवधि में किया था। विवेकानन्द की शिष्या भगिनी निवेदिता की पुस्तक का भी अनुवाद उन्होंने किया।

उस समय की साने गुरु की 'अश्रु' नामक एक कविता अत्यन्त हृदयस्पर्शी है—

अश्रु ईश की अमित देन है
मेरे पास इसे रहने दो।
धन सुख मान सभी कुछ ले लो
पर लोचन गीले रहने दो॥
अश्रु ज्ञान दाता गुरु मेरा
अश्रु कल्पतरु अतिशय सुन्दर।
अश्रु बिन्दु में सुख का सागर
उससे कभी न तू वंचित कर॥
छोटा अश्रु, नीर कितना, पर
मन उपवन उससे लहराता॥
मेरे पास इसे रहने दो
अश्रु वियोग नहीं है भाता॥
यह मेरा बल, मेरी आशा
कितना लघु, पर कितना गुरुतर॥
मेरे पास इसे रहने दो
मेरे लिए अश्रु ही ईश्वर॥

अक्टूबर 1932 में नासिक जेल से साने गुरु छोड़ दिये गये। उनका फिर तूफानी कार्यकलाप शुरू हुआ। उनके भाषण श्रोताओं के हृदय सागर में ज्वार पैदा करते थे। 26 जनवरी सारे देश में स्वतन्त्रता दिवस के रूप में मनाया जाता था। 26 जनवरी को साने गुरु को फिर गिरफ्तार कर लिया गया। चार महीने की उन्हें सजा हुई और उन्हें फिर धुलिया जेल में भेज दिया गया। 'खरा धर्म नाम' की उनकी एक महत्व की कविता यहीं पर लिखी गई।

धर्म तो एक ही सच्चा,
जगत को प्यार देवें हम॥
जगत में दीन जन जितने,
जगत में पद्दलित जितने,
उन्हें ऊपर उठावें हम॥

सदा जो अति व्याकुल हैं,
जिन्हें सब ही सताते हैं,
उन्हें जाकर हंसावे हम ॥
किसी को कष्ट नहिं देवें,
किसी को दुख क्यों देवें,
सभी को बन्धु माने हम ॥
प्रभू सन्तान है सारे,
सभी जन है उसे प्यारे ।
भला क्यों नीच माने हम ?
धर्म का सार यह ही है,
सत्य का सार यह ही है ।
परार्थ प्राण देवें हम ॥
हमें यदि धर्म प्यारा है,
हमें भगवान प्यारा है ।
बने तो प्रेम मय ही हम ॥

ऐसे प्रेमधर्म के उपासक बन सानें गुरु जेल से बाहर आये ।

7. भारतीय संस्कृति के उपासक

साने गुरु लोक शिक्षक बनकर जेल से बाहर आये। अब उनकी पाठशाला चहारदीवारी के बाहर थी। दिन रात चलने वाली थी। जेलों में चार वर्ष से अधिक समय बिताकर वे बाहर आये थे। विनोबा जी की गीता प्रवचन उनके मन में रमी हुई थी। आमलनेर की रथ-यात्रा के समय उन्होंने गीता पर प्रवचन किया। इसके बाद वे पुणे आये। हृदय में अनेक प्रकार के अनुभव भावनायें, कल्पनायें उठ रहीं थी, उन्हें कागज पर उतारना था।

इसी समय उन्हें एक नयी कल्पना सूझी। उनके मन में आया कि संसार मे मां पहला गुरु है। अपनी मां से उन्हें रूढ़ार्थ में कोई विशेष शिक्षा नहीं मिली थी। वे निरक्षर थीं। परन्तु उनमें इतनी सहृदयता, इतनी समझ कहां से आयी? मां की जीभ पर खेलने वाली 'ओवी' छन्दों का स्मरण उन्हें हो आया। कहा जाता है कि जैसे ही स्त्री चक्की चलाने बैठती है, उसे 'ओवी' याद आ जाती है। वह अलिखित और अपौरुषेय साहित्य, इस पंचम वेद को अगर संग्रहीत किया जाय, तो कैसा? ऐसे करने से मानवी सम्बन्धों का सहज ही चित्र प्रकट हो जायेगा। हृदयों के अन्दर में घूमने वाली भाव-कविताओं का संग्रह करना कोई सरल काम न था। एकान्त की वह भाव कविता शायद ही कभी प्रकट होती। साने गुरु का एक उपाय सूझा। जेल में आटा पीसने का काम उन्होंने ही किया था। अन्न साफ करने में, आटा पीसने में उन्होंने अपनी मां की सहायता की ही थी। वैसा ही किया जाय, तो कैसा रहे? और साने गुरु ने वैसा ही किया। चक्की चलाती हुई स्त्रियां 'ओवी' गाती थीं। साने गुरु उन 'ओवियों' को सुनते, फिर उन्हें लिख लेते। एक पुरुष यह काम शुरू करे यह एक चमत्कार था। साने गुरु ने शारदा के मन्दिर में लोक-साहित्य का एक नया ही प्रवाह लाकर उपस्थित कर दिया।

कांग्रेस अधिवेशन के लिए वे बम्बई गये। वहां उनकी भेंट खानदेश के कार्यकर्ताओं से हुई। केन्द्रीय विधि मंडल का चुनाव होने वाला था। यह एक अच्छा मौका था। तानाशाही करने वाली सरकार के विरुद्ध स्वतंत्रता आन्दोलन को चलाने के लिए जनता है। इस लोकमत को प्रकट करने के लिये यह एक

सुन्दर अवसर था। खानदेश के कार्यकर्ताओं के लिए चुनाव प्रचार करने की बात साने गुरु ने स्वीकार कर ली और वे प्रचार कार्य में लग गये। तूफानी प्रचार कार्य शुरू हुआ। केन्द्रीय विधि मंडल के दोनों चुनावों में विजय प्राप्त हुई, इससे स्पष्ट सिद्ध हो गया कि महाराष्ट्र का पूरा समर्थन कांग्रेस को प्राप्त है।

खानदेश के सत्याग्रहियों और कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के साथ विनोबा जी का विशेष सम्बन्ध था। उन्होंने विनोबा को बुलाया। विनोबा की ऋषि वाणी फिर से गूंजी। विनोबा जी ने साने गुरु से पूछा—"अब क्या करना है?" गुरु जी ने उस समय तक कुछ निश्चय नहीं किया था। साने गुरु एक प्रचंड शक्ति हैं। उनका उचित उपयोग करने की दृष्टि से खानदेश की सीमा पर 'नावरानावरी' गांव में एक आश्रम खोला गया। लेकिन साने गुरु का मन वहां लगा नहीं। एक दिन आश्रम छोड़कर वे चल दिये। सब लोगों को चिन्ता हुई और उनकी खोज होने लगी।

गुरु जी सीधे पुणे आये। खानदेश के गरीब विद्यार्थी कष्ट उठाकर पढ़ रहे थे। साने गुरु ने अपने को उनकी मां बनाने का निश्चय किया। उन्होंने एक कोठरी किराये पर ली। जहां वे बालकों के लिए भोजन तैयार करते। 'माझेध्येय' (मेरा ध्येय) कविता को साने गुरु ने नासिक जेल में लिखा था—

कब ऐसा अवसर आयेगा?
कभी किसी के आंसू पोंछू
पीछे सुख दे उसे हंसाऊं।
दीन दलित के निकट पहुंच कर
मीठे मीठे शब्द सुनाऊं॥
कब ऐसा अवसर आयेगा?
कभी करूं मैं साफ मार्ग को
और कभी मल-मूत्र हटाऊं।
मां जैसी ममता ले दौड़ूं
रोगी का मैं कष्ट मिटाऊं॥
कब ऐसा अवसर आयेगा?
जिसका नहीं जगत में कोई
उसके लिए हाथ ये मेरे।
मृदु वाणी से, स्नेह दृष्टि से
रहूं सदा मैं उसको घेरे।
कब ऐसा अवसर आयेगा?

कभी लिखूं मैं कथा-कहानी
नाटक कविता और निबन्ध।
भाषान्तर मैं करूं कभी तो
लिखूं स्वयं के कभी प्रबन्ध।
कब ऐसा अवसर आयेगा ?
छोटी छोटी रचनाओं में
मैं अन्तर के भाव भरूंगा।
हृदय कमल खिल उठे निरन्तर
प्रभु का पूजन सदा करूंगा।
कब ऐसा अवसर आयेगा ?
भले किसी कोने में आश्रय
सदा सुमन की तरह हसूं मैं।
सुख सन्तोष मिले उसमें ही
मन में ऐसा भाव भरूं मैं।
कब ऐसा अवसर आयेगा ?

बच्चे भोजन करके स्कूल जाते, कि साने गुरु सारे कामों को निपटाकर घंटा-दो घंटा लिखने बैठते। संध्या समय बच्चों का भोजन समाप्त होता कि साने गुरु बच्चों से इधर-उधर की बातें करते। रात्रि में जब शान्ति फैल जाती, तो फिर लिखने बैठ जाते। इस अवधि में उनके द्वारा लिखी गई महत्व की पुस्तक है 'भारतीय संस्कृति'। इसकी प्रस्तावना में उन्होंने लिखा है— "एक सामान्य व्यक्ति के द्वारा सामान्य जन के लिए लिखी गयी यह पुस्तक है।" परन्तु वास्तव में यह असामान्य पुस्तक है। वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में भारतीय संस्कृति के स्वरूप को इसमें उभारा गया है। इसलिए वर्तमान काल में भारतीय संस्कृति का सगुण-साकार स्वरूप कैसा हो सकता है, इस पुस्तक में स्पष्ट किया गया है। और उसके लिए क्या कार्य करना चाहिए, इसकी जानकारी दी गयी है।

साने गुरु ने कहा है—"भारतीय संस्कृति से मैं अत्यधिक प्रेम करता आया हूं। भारतीय संस्कृति पर विशेष कुछ लिखने का मेरा कोई अधिकार नहीं है, फिर भी प्रेम के कारण कुछ लिखने का मेरा अधिकार है। भारतीय संस्कृति से प्रेम करने में मैं किसी से हारने वाला नहीं हूं।"

भारतीय संस्कृति की जीवन की ओर देखने की दृष्टि को स्पष्ट करते हुये गुरु जी लिखते हैं—"हृदय और बुद्धि दोनों की पूजा करने वाली भारतीय

संस्कृति है। उदार भावना और निर्मल ज्ञान का योग कर जीवन में सुन्दरता पैदा करना भारतीय संस्कृति का काम है। जीवन को ज्ञान-विज्ञान से जोड़कर संसार में मधुरता फैलाने वाली भारतीय संस्कृति है। भारतीय संस्कृति का अर्थ है—कर्म, ज्ञान और भक्ति की सजीव महिमा, शरीर बुद्धि और हृदय को सतत सेवा में लगाये रहने की महिमा। भारतीय संस्कृति का अर्थ है—सहानुभूति, विशालता, सत्य का प्रयोग। भारतीय संस्कृति का अर्थ है एक ही स्थान पर बने न रहकर, ज्ञान का सहारा लेकर आगे बढ़ना। संसार में जो-जो सत्य शिव सुन्दर दिखाई दे, उसे लेते हुये आगे बढ़ना। संसार के सभी ऋषि-मुनियों का यह वन्दन करती है। संसार के सब धर्मों के संस्थापकों का वह आदर करती है। जहां कहीं भी महानता है, भारतीय संस्कृति उसकी पूजा करती है और आदर और आनन्द के साथ उसका संग्रह करती है।

भारतीय संस्कृति में संग्रह करने की वृत्ति है। संकुचितपन के दोष से उसे वैर है। इसलिए संस्कृति का नाम लेते ही श्रद्धा से मेरे हाथ जुड़ जाते हैं। भारतीय संस्कृति का अर्थ है मेल। इस प्रकार का महान मेल कराने वाली, सम्पूर्ण मानवता को लेकर मांगल्य की ओर जाने वाली यह संस्कृति है। इस महान संस्कृति का एक छोटा-सा उपासक जन्म-जन्मान्तर में बना रहूं— यही मेरी कामना है।"

साने गुरु का पुणे का पता मालूम करके कुछ कार्यकर्ता उनके पास पहुंचे। कांग्रेस का स्वर्ण महोत्सव सम्बन्धी आयोजन महाराष्ट्र में करने का निश्चय किया गया था। यह अधिवेशन गांव में होने वाला था। शहरों में होने वाली कांग्रेस को गांवों में ले जाने का यह प्रयत्न था। गांधीजी ने यह नयी जानकारी दी थी कि भारत गांवों में रहता है। इस महान कार्य को पूरा करने के लिए साने गुरु की सब प्रकार की पूरी मदद की उन्हें जरूरत थी। 'न' कहनी गुरुजी के लिए सम्भव न था।

कांग्रेस में पुंजीभूत हुई देश की एकता की पुण्यार्थी इस अधिवेशन के द्वारा महाराष्ट्र को मिलने वाली थी। इसलिए उसका भव्य स्वागत महाराष्ट्र के द्वारा होना ही चाहिये। साने गुरु खानदेश में आये। विनोबा जी आये। अप्पा साहेब पटवर्धन आये। फैजपुर के पास तिलक नगर की स्थापना हुयी। पं० जवाहरलाल नेहरू अध्यक्ष थे। अधिवेशन के दिन साने गुरु जी अधिवेशन के मंच पर नहीं थे। वे थे सफाई करने वाले दल में।

इसके बाद प्रादेशिक विधि मंडलों का चुनाव आया। कांग्रेसी उम्मीदवारों को विजयी कराने के लिए साने गुरु ने खानदेश का पुन: दौरा किया। सम्पूर्ण जनता के समर्थन से नेता का चुनाव होने वाला था। यह काम भी साने गुरु

को करना था। उन्होंने उसे अच्छी तरह सम्भाला। चुनाव, लोकशिक्षण का एक पर्व हुआ करता है। श्री साने गुरु चुनाव को इसी दृष्टि से देखते थे। उनके भाषण भी इसी उद्देश्य से प्रेरित होते थे। देश के सामने जो ज्वलन्त प्रश्न थे, उन्हीं पर वे बोलते थे। साने गुरु का मन था कि किसानों-मजदूरों की समस्याओं को हल करने के लिए कांग्रेस को मजबूत बनाना चाहिये। वे कहते थे कि दीन और गरीब लोगों के लिए ही तो स्वतंत्रता प्राप्त करनी है।

कांग्रेस को जनता का समर्थन मिला। कांग्रेस मंत्रिमंडल अस्तित्व में आया। साधारण जनता की अपेक्षायें खूब बढ़ गई थीं। भारत के स्वतंत्र हो जाने पर किस प्रकार का राज्य बनेगा, इसका संकेत इस मंत्रिमंडल को देना था। गांधी जी का यह मत था और इसी दृष्टि से उन्होंने अनेक कार्यक्रम हाथ में लिये थे।

मराठी में एक कहावत है, जिसका अर्थ है—भोजन पकने तक धीरज रखा जा सकता है मगर परोसे जाने के बाद ठंडा होने तक धीरज रखना असह्य होता है। शोषित और वंचित जनता अधीर हो रही थी। 'अब धीरज मेरे मन में नहीं है'—ऐसी स्थिति लोगों की हो रही थी। उधर सत्ता प्राप्त करने वाले नेताओं को कुछ जल्दी नहीं थी। उनका उपदेश होता कि थोड़ा धैर्य धारण करो। साने गुरु और उन जैसे अन्य लोग उतावले हो रहे थे। उतावले और सन्तोष वाले लोगों में हमेशा टकराव होता था। सन्तोष वाले लोग कहते थे—"तुम लोग आन्दोलन करके कांग्रेस के काम को बदनाम कर रहे हो।" उतावलों वाले कहते थे—"तुमने स्वतंत्रता आन्दोलन के समय आश्वासन दिया था। करांची कांग्रेस में तुम लोगों ने जनता को एक वचन दिया था। अब जब सत्ता हाथ में आयी, तब शीघ्रता से काम करके गरीब जनता को सान्त्वना दो। इस देश में उन्हीं की संख्या अधिक है। हम सब का आन्दोलन तुम सब का हाथ मजबूत करने को था। तुम अपने विरोधियों से कहो कि यह जनता का निर्देश है। इसीलिए शीघ्र सुधार किया जाय, नहीं तो जनता बिगड़ेगी। जल्दी से कुछ ऐसा करो कि जिससे हिंसा का तांडव न होने पावे। तुमने जो कुछ करने का आश्वासन दिया था, वह तुम्हें शीघ्र करना है। सिर्फ इसीलिए यह सारा आन्दोलन है।" साने गुरु इस दल के नेता हैं।

6 अप्रैल 1932 को राष्ट्रीय सप्ताह के पहले दिन, जलियावाले बाग के तथा अन्य व्यक्तियों के बलिदान का स्मरण कर, जेब में पैसे न होने पर भी जनता में अपने विचारों का प्रचार करने के लिए साने गुरु ने 'कांग्रेस' नाम का एक साप्ताहिक पत्र शुरू किया। उन्होंने इस पत्र द्वारा घोषणा की कि

गरीबों के दुखों को प्रकट करने के लिए यह पत्र है। पैदा करने वाले किसानों-मजदूरों की दृष्टि से सरकार को काम करना चाहिये। इस विचार को प्रकट करने वाला यह पत्र है। कांग्रेस हमारी मां-बाप है। उसके द्वारा हमारे सारे दुख दूर हों—इस श्रद्धा को लोगों के मन में बनाये रखने के लिए यह साप्ताहिक है।

भारतीय संस्कृत का यह सन्देश रहा है कि दरिद्र नारायण की सेवा करो, धनिकों का धन मत बढ़ाओ। यह संस्कृति सगुण साकार बने इसी के लिए साने गुरु आतुर हो रहे थे।

8. अब सम्पूर्ण राष्ट्र जागे

प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें स्थापित हुईं। माने गुरु की अपेक्षा थी कि इन सरकारों को स्वतंत्रता की ऐसी झलक दिखानी चाहिये जिसे देख कर सामान्य जनता स्वतंत्रता के आन्दोलन में शामिल हो जाय। इसी दृष्टि से वे सर्वत्र घूम रहे थे। वर्षा ने अपना रुद्र रूप दिखाया। फसलें डूब गईं। किसान पहले ही गरीब थे। उनकी कमर और टूट गई। इन दीन किसानों को किसी प्रकार का आश्वासन सरकार को देना था। जब तक बच्चा रोता नहीं, मां भी उसे दूध नहीं पिलाती। जब तक सरकारों के सामने रोयेंगे नहीं, वे भी कुछ न करेंगी।

गुरु जी के पहुंचने से पहले ही उनके गीत लोगों के मन में गूंजने लगे। इन गीतों में ऐसा प्रचंड आवेश था, जोश था कि मुर्दा भी उठकर खड़ा हो सकता था—

उठे समूचा देश महान।
जागृत होवे हिन्दुस्तान॥
हो किसान का अपना राज्य
कामगार का अपना राज्य
प्राप्त करें देकर के प्राण॥
तत्पर हो किसान-मजदूर
भाव एकता से भरपूर
करें राष्ट्र का तब उत्थान॥
पड़े नहीं अब कभी रहें
मार लात की नहीं सहें
सबने ली है मन में ठान॥

एक दूसरा गीत भी सबकी जबान पर था—

जागृत होवे राष्ट्र अशेष।
जागे प्यारा भारत देश॥

कोटि-कोटि अब उठे किसान
निर्भय होकर सीना तान
गावें स्वतंत्रता का गान
नष्ट करें अब सारे कलेश ॥
रात दिवस तुम करते काम,
कब पाते जीवन आराम,
लेता लूट हरामी दाम,
तुम में जागे अब तो त्वेष ॥
निकलें मोर्चे, निकले फौज,
बन्द लुटेरों की हो मौज,
मिटे दैन्य जागृत हो ओज,
कोटि किसान बने फन शेष ॥
जागृत होवे राष्ट्र अशेष ।
जागे प्यारा भारत देश ॥

परिणाम स्वरूप किसानों का एक विराट प्रदर्शन जलगांव में हुआ । एक नवीन आत्मविश्वास उसमें जागृत हुआ । किसानों के मन में यह भावना जागृत हुई कि स्वतंत्रता अपने लिए है, अपने लिए होनी चाहिये । मजदूर वर्ग भी अपने लिए न्याय मांगने को कमर कस कर खड़ा हो गया । साने गुरु के विद्यार्थी जगह-जगह फैले थे । उन्होंने गांव-गांव में 'प्रकाश-मंडल' नाम की संस्थायें स्थापित की । इन संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य था कि युवकों में स्वतंत्रता की भावना जागृत हो । इन संस्थाओं की ओर से साक्षरता की कक्षायें चलाई जाती थीं, सफाई के कार्यक्रम नियोजित होते थे, सहभोजन की व्यवस्था की जाती थी, अध्ययन केन्द्र खोले जाते, घूम-घूम कर खादी बेची जाती । जनता की शिक्षा के लिए पोस्टर तैयार किये जाते । व्याख्यानों का आयोजन किया जाता था ।

साने गुरु जी की कुछ चुनी हुई कविताओं का एक संग्रह उनके विद्यार्थियों ने प्रकाशित किया । ईश्वर भक्ति और देश भक्ति की ये कवितायें थीं । इस नये संग्रह को साने गुरु ने बड़ी विनम्रता से 'पत्री' नाम दिया । अपने समर्पण में उन्होंने अपनी भावना इन शब्दों में व्यक्त की —"तुम्हारे पूजन के लिए सुगन्धित फूल कहां से लाऊं ? इसलिए 'पत्री' नाम देकर मैं इसे आपके पवित्र उदार चरणों को समर्पित करता हूं ।"

युवावर्ग में विशेष उत्साह था । किन्तु इतने में दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ गया ।

भारतीय जनता की बिना सम्मति लिये ही ब्रिटिश सरकार ने भारत को युद्ध में सहभागी बना दिया।

जिनका खुद का दावा था कि वे स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, वे ही भारतीयों को स्वतंत्रता देने के लिए तैयार न थे। इसका विरोध प्रकट करने के लिए कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिये। ब्रिटिश सरकार की तानाशाही फिर शुरू हो गयी। 'पत्री' पुस्तक को जब्त कर लिया गया। परन्तु उससे पहले ही 'पत्री' की प्रतियां और उसकी कवितायें सर्वत्र पहुंच चुकी थी। कांग्रेसी समाचार पत्रों से बहुत बड़ी जमानत मांगी गयी और इसे लेकर विशेष आन्दोलन छिड़ गया। कांग्रेस पत्र बन्द हो जाने पर साने गुरु को उससे छुट्टी मिली और वे मुक्त होकर घूमने लगे। गुप्त पुलिस उनके पीछे पड़ गयी। लेकिन साने गुरु की तीव्रता उस मुर्दा सरकारी तंत्र में कैसे आने वाली थी? नासिक जिले के चांदवण गांव में कांग्रेस युवादल की परिषद हुई। साने गुरु का यहां विशाल रूप प्रकट हुआ। सरकारी तानाशाही के खिलाफ उन्होंने अपनी आवाज बुलन्द की और रचनात्मक काम के महत्व पर प्रकाश डाला। इस निमित्त उस स्थान पर की गयी ग्रामोद्योग और साक्षरता सम्बन्धी प्रदर्शनी का महत्व विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हरिजन बस्तियों में जाकर उनसे मिलना और सफाई आदि की व्यवस्था करने का उल्लेख होना ही चाहिये। चांदवण में होने वाली परिषद समाप्त हुई और गुरु जी का फिर से घूमना शुरू हो गया। उनकी गिरफ्तारी का वारंट निकला।

दिसम्बर 1940 के अन्त में उनको पुनः गिरफ्तार किया गया। और उन्हें सजा देकर नासिक जेल में भेज में दिया गया। नासिक की जेल में रहते समय सेवादल की महत्ता प्रकट करने वाली 'श्याम जी पत्रे' नाम की एक पुस्तक लिखी। साने गुरु पर मुकदमा चला कर 2 जनवरी 1941 के दिन दो वर्ष की सजा का हुक्म सुनाया गया और उन्हें फिर से जेल में डाल में दिया गया।

इस भयंकर दौड़ धूप के समय भी बच्चों के लिए कुछ न कुछ काम चलता ही रहा। जैसे ही समय मिलता, कुछ न कुछ लिखने लगते। इसी अवधि में उन्होंने 'क्रान्ति' नाम का उपन्यास लिखा। क्रान्ति की कल्पना को उन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया --

"क्रान्ति का अर्थ मात्र परिवर्तन नहीं है। क्रान्ति का अर्थ है मानव मूल्यों का परिवर्तन। आजकल संसार में किसी भी बात को महत्व दिया जाता है। जिस बात को महत्व देना चाहिये, उस ओर किसी का ध्यान नहीं है। मुख्य महत्व मानवता का है। परन्तु आजकल उसका मूल्य नहीं है। आजकल हम लोग अनावश्यक की पूजा कर रहे हैं। जिनके श्रम के सहारे आज पूरी दुनिया

जो रही है, वह आज मर रहा है। उसका आज न कोई मान है न स्थान।

"महत्व पूर्ण स्थानों पर गोबर-गणेश बैठे हुये हैं और धन-धान्य पैदा करने वाले नीचे बैठे हैं। यह बदलना चाहिये। जो श्रम नहीं करते उन्हें तुच्छ समझना चाहिये। अन्याय को सिंहासन से उतार कर उस पर न्याय को बैठाना ही क्रान्ति है। पैसे की प्रतिष्ठा नहीं, हां में हां मिलाने की नहीं, विद्या के गर्व की नहीं, कुल प्रतिष्ठा के गर्व की भी नहीं, बाहरी बल की भी नहीं। तुम्हारा स्वयं का क्या मूल्य है? वह कहां है? तुम्हारी क्या कथित है- यह तुम्हारे किये हुये काम से आंकने दो। इसे कहते हैं 'क्रान्ति'। मरना तो सभी को है, मगर मानवता के ध्येय के लिए मरना ही सच्चा मरना है। मनुष्य की आत्मा की प्रतिष्ठा स्थापन के लिए मरना ही सच्चा मरना है।"

इस प्रकार की मानवी क्रान्ति हो—इसी के लिए साने गुरु व्याकुल थे।

साने गुरु बालकों की प्रसन्नता के लिए कहानियां सुनाया करते थे और बच्चे तल्लीन होकर सुनते थे। साने गुरु की श्रद्धा थी कि बच्चों का जितना मनोरंजन करेंगे, भगवान से उतना ही नाता जुड़ेगा। बच्चों के लिए उन्होंने मीठी-मीठी कहानियां लिखी थीं। दस खंड लिखने का उनका विचार था। इन कहानियों के सुनने वाले उनसे कहा करते थे कि आप इन कहानियों को लिख डालिये। पुस्तक के रूप में अगर छप गई, तो हम सब उनको प्राप्त कर सकेंगे।

लेकिन साने गुरु के जीवन की गति इतनी तेज थी कि लिखने का सुअवसर उन्हें कभी ही मिल पाता था। विद्यार्थियों अथवा कार्यकर्ताओं की आर्थिक सम्बन्धी कठिनाई आने पर वे कुछ लिखने बैठ जाते और उस लेखन के सारे हक बेच कर प्राप्त धन उनको दे दिया करते थे। गुरु जी को इसका जरा भी दुख न होता था।

धुलिया जेल में उन्हें अनेक बार अकेलापन अनुभव होता था। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—"अनेक लोगों के बीच रहते हुये भी मुझे अकेलापन अनुभव होता है। मैं कौन हूं—इसका उत्तर अन्य लोगों की भांति मुझे भी कहां मिला? मैंने एक बार 'कांग्रेस' पत्र में लिखा था कि मैं सब का समन्वय हूं। लेकिन यह वाक्य भी सम्बन्धित अर्थ रखता है।

जो जातीय संगठन बने हुये हैं, उन्हें समाप्त होना चाहिये। जातीयता का भाव मुझे सहन ही नहीं होता। मैं उस वातावरण में घुटन अनुभव करता हूं। यह हिन्दू है, वह मुसलमान, यह छूत है वह अछूत है, जातियों के ये घेरे मुझे सहन नहीं होते। मैं अपने जीवन में जातीयवाद से कुछ नहीं ले सका। गांधीवाद और समाजवाद दोनों ही जाति भेद को स्वीकार नहीं करते।

इसलिए मुझे वे अच्छे लगते हैं। अपने जीवन में मैं इन दोनों का समन्वय करता रहता हूं।"

साने गुरु के जेल में रहते समय बाहर के जीवन के रंग बदल रहे थे। स्वतंत्रता की नाव को गांधी जी बड़ी कुशलता से खे रहे थे। विदेशी शासकों की शक्ति का नाश दो ही तरह से हो सकता था। एक रणक्षेत्र में पराभव करना। इस प्रकार उसका नाश हो सकेगा—यह किसी को नहीं लगता था। लेकिन दूसरा मार्ग पहले की अपेक्षा कठिन था। वह था नैतिक क्षेत्र में। नैतिक क्षेत्र का पराभव रणक्षेत्र के पराभव से अधिक कठिन था। गांधी जी को इन दोनों पराभवों की चिन्ता थी। उन्होंने अपना सारा कौशल उसी में लगा दिया था।

प्रारम्भ में रशिया ने जर्मनी से हाथ मिलाया, तब अनेक व्यक्तियों का भ्रम दूर हो गया कि लूटे हुये माल को बांटने सम्बन्धी यह सन्धि थी। लेकिन जर्मनी ने रशिया के विरुद्ध अचानक लड़ाई छेड़ दी। जर्मनी से पश्चिमी देशों की लड़ाई चल रही थी। यह देखकर जापान ने जर्मनी से समझौता कर पूर्व की ओर से हमला करना शुरू कर दिया। एक के बाद एक को जीतता हुआ वह आगे बढ़ रहा था। उसकी घुसपैठ को रोकने का काम केवल स्वतंत्र भारत कर सकता था—यह बात स्पष्ट थी। गांधी जी ने तथा कांग्रेस ने ब्रिटिश शासकों और उसके दोस्तों को समझानी चाही, लेकिन वह व्यर्थ हुआ। ब्रिटिश लोग भारत में हैं, सिर्फ इसीलिए जापानी भारत आ रहे हैं।

गांधी जी का यह कथन स्वार्थान्ध ब्रिटिश शासकों ने पसन्द नहीं किया और गांधी जी को स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए शान्तिपूर्वक आन्दोलन करने के लिए कहना पड़ा।

यह सब तथ्य जेल में रहते हुए साने गुरु ने समझा और वे चिन्तित हो उठे। ऐसे शुभ अवसर पर क्या जेल में सजा भुगतते रहें? वे सोचने लगे—इस स्वतंत्रता युद्ध में अपने जीवन की चार समिधा यदि डाल सकें, तो मेरा जीवन धन्य होगा। इस विचार ने उन्हें व्याकुल कर दिया। रात में उन्हें नींद नहीं आती। जेल के अधिकारियों ने साने गुरु की इस व्याकुलता को जाना। उन्होंने नियमों का उल्लंघन न करते हुये साने गुरु के लिए क्या किया जा सकता है इसका विचार किया।

गुरु जी के जीवन का गहरा प्रभाव 'ब्लेक' नामक जेलर पर पड़ा था। उसने कहा—"जीवन में जितने भी आदमी मुझे मिले हैं उनमें यह सर्वश्रेष्ठ पुरुष है। उसने कभी कोई मांग सामने नहीं रखी। वह तो एक सन्त है।"

साने गुरु के छूटने की तारीख थी 10 अगस्त 1942, बाहर धड़पकड़ शुरू हो गई थी। यह स्पष्ट था कि छूटने के बाद साने गुरु को फिर गिरफ्तार कर लिया जाएगा। इसलिए जेलर ब्लेक ने 9 अगस्त 1942 की रात्रि के 12 बजे का घंटा बज जाने के बाद 10 अगस्त 1942 को नियमानुसार प्रातःकाल साने गुरु को छोड़ दिया।

गुरु जी भूमिगत होकर भारत छोड़ो आन्दोलन में शामिल हो गये। गुरुजी का छुटकारा होते ही उनका स्वागत करने के लिए आई जनता को जेल में डाल दिया गया।

9. भारत छोड़ो आंदोलन

साने गुरु जी यद्यपि जेल में थे, फिर भी बाहरी दुनिया में घटने वाली प्रत्येक घटना पर उनका ध्यान था। कम्यूनिस्टों का यह मानना था कि जब तक हिटलर और स्टेलिन में दोस्ती है, तब तक स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए अंग्रेजों से तत्काल युद्ध करना उचित होगा। पर आगे चलकर हिटलर और स्टेलिन में अनबन हो गई और रूस ने इंग्लैंड और अमेरिका से दोस्ती कर ली। भारतीय स्वतंत्रता का समर्थन करने वाले कम्युनिस्ट स्वतंत्रता युद्ध को एकदम भूल गये। उनकी इस नीति को देखकर साने गुरु दुखी हुए। वे चाहते थे कि किसान और मजदूर कम्युनिस्टों का साथ न दें। स्वतंत्रता के बिना समाजवाद का क्या अर्थ ? साम्राज्यवादियों के हाथ मजबूत करने पर स्वतंत्रता कैसे प्राप्त हो सकेगी ? यह सीधा प्रश्न था। किसान मजदूरों पर अपना प्रभाव कम होते देख कम्युनिस्ट साने गुरु का विरोध करने लगे। ऐसी विचित्र स्थिति थी जब साने गुरु जेल से छूटे। स्वतंत्रता संग्राम में अगर खानदेश पिछड़ जाय तो गुरु जी को प्राणान्तक दुख होता। साने गुरु ने भूमिगत होते ही तरुण कार्यकर्ताओं की गुप्त रूप से एक सभा की और समय-समय पर उनका मार्गदर्शन करते रहे। कार्यकर्ता गण 'भारत छोड़ो' आंदोलन का संदेश देते हुए तूफानी दौरा करने लगे और साने गुरु का चिर प्रतीक्षित स्वप्न पूर्ण होते दिखाई देने लगा।

भूमिगत अन्य मित्रों से सम्बन्ध जोड़कर उनकी योजना के अनुसार साने गुरु को काम करना था। इसलिए खानदेश छोड़कर वे पुणे आये। और फिर बम्बई पहुंचे। अच्युतराव पटवर्धन, शिरुभाई लिमये, एस० एम० जोशी, नाना साहेब गोरे व अन्य भूमिगतों से उनका सम्बन्ध जुड़ा। साने गुरु वेष बदलकर घूमने लगे। उन्होंने बम्बई में प्रचार कार्य प्रारम्भ किया। भूमिगत कार्यकर्ताओं के लिए खाना बनाने वाले महाराज के रूप में काम करने लगे। इसके अलावा मराठी में परचे तैयार करना तथा अन्य साहित्य तैयार करना इन्हीं का काम था।

बम्बई में लेमन्टन रोड पर भूमिगत लोगों का एक अड्डा था, जो 'प्रतापगढ़' नाम से जाना जाता था। खेतवाड़ी में दूसरा अड्डा था गुरुजी के कारण लोग

उसे 'संतवाड़ी' कहते थे। बम्बई में जब भी साने गुरु रहते थे, तब इन्हीं दो स्थानों में से किसी एक में रहकर उन्हें सौंपे हुए काम किया करते थे।

जो आंदोलन चल रहा था उसकी सही-सही जानकारी जनता को न मिल सके, इस पर सरकार बहुत सतर्क थी। गुरुजी उन समाचारों को लोगों तक जल्दी से जल्दी पहुंचाने की व्यवस्था भूमिगत तरीकों से करते थे।

गुरुजी की दृष्टि में स्वतंत्रता क्रांति के मार्ग का पहला कदम है। स्वतन्त्रता के लिए लड़ने वाले ये लोग क्रान्ति के ही उपासक हैं। इसी अवधि में साने गुरु ने 'क्रान्ति के मार्ग पर' नाम की 100 पृष्ठ की एक पुस्तक एक ही बैठक में लिख डाली। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का एक स्फूर्तिदायक इतिहास सर्वत्र पहुंचा, इससे इस आंदोलन का विशाल रूप जनता के सामने आया। प्रतापगढ़ पर एक बार जयप्रकाश जी आये; तब गुरुजी ने माता जैसी ममता से उनको भोजन कराया और वे रात भर आराम से सो सकें, इसलिए गुरुजी रात भर पहरा देते रहे। उनके स्वास्थ्य के लिए और उनकी सुरक्षा के लिए गुरुजी ने मन ही मन में प्रार्थना की।

स्वतंत्रता सैनिकों के कुटुम्बी जनों की कठिन परिस्थिति की बात जब भी गुरुजी सुनते, वे दुखी हो जाते थे। कोई न कोई पुस्तक लिखकर किसी प्रकाशक को देकर जो भी धन मिलता, उसे कुटुम्बी-जनों तक पहुंचा कर उनकी मदद करते थे।

बम्बई सरकार की गुप्त पुलिस भूमिगत कार्यकर्ताओं को पकड़ने का भरसक प्रयत्न कर रही थी। उधर जनता उनका बचा रही थी। सिर्फ बिलों में छिपकर बैठना और अपने को बचाना मात्र किसी का उद्देश्य नहीं था। अंग्रेजी साम्राज्य को, स्वतंत्रता प्राप्त करने वाले लोगों के आत्मबलिदान के कार्यों को दिखाना था, साथ ही लोगों के हृदय में स्वातंत्र्य-प्रेम जागृत करना उनका काम था। इसलिए बड़ी सावधानी से आंदोलन का संचालन किया जा रहा था। कुछ भूमिगत लोग हंडल हाउस (भूतघर) नामक स्थान पर रहते थे तो कुछ लोग 'मूषक महल' नामक स्थान पर।

भारत छोड़ो आंदोलन में ध्येय निष्ट और समर्पणशील युवकों की बाढ़ आई हुई थी। साने गुरु इन सत्याग्रहियों को मां के जैसा प्यार देते थे। उनको आनन्द देने की दृष्टि से उनके साथ हास्य-विनोद में शामिल होते। पुलिस ने 'मूषक महल' के आसपास अपना जाल पसारा और एक रात अचानक अनेक भूमिगत सत्याग्रहियों को पकड़ लिया गया। भूमिगत के रूप में साने गुरु ने आठ महीने काम किया। 18 अप्रेल 1943 के दिन पुलिस ने उन्हें पकड़ा और यरवड़ा जेल भेज दिया। सभी भूमिगत लोगों को अचानक पकड़े जाने का

दुख था । महाराष्ट्र के प्रसिद्ध मुकदमे में साने गुरु को शामिल किया गया । इनमें से कितनों को फांसी पर लटकाने का सरकार का इरादा था । क्रांतिकारी उस भव्य अवसर की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहे थे । शत्रु पक्ष की ओर से कठोर से कठोर सजा को प्रसन्नता के साथ स्वीकार करने की उनकी तैयारी थी । लेकिन सरकार के ये सारे इरादे धूल में मिल गये । और जिन व्यक्तियों पर मुकदमा चल रहा था, उन्हें राजबन्दी के रूप में रखना पड़ा ।

यरवडा जेल तो मानो उस समय राजनीति शास्त्र का एक महाविद्यालय बन गया था । आवासीय विद्यालय । आचार्य जावडेकर, आचार्य भागवत, रावसाहब पटवर्धन जैसे कितने ही तत्वनिष्ट व्यक्ति वहां थे । वे विभिन्न विषयों की कक्षायें चलाते थे । व्याख्यान माला का आयोजन होता । गुरुजी बंगला भाषा सिखाते, तो रावसाहब पटवर्धन उर्दू की कक्षा चलाते थे । सामुदायिक वाचन की व्यवस्था होती थी । हास्य, विनोद, खेल, रसोई आदि सभी कामों में सब लोग भाग लेते थे । राष्ट्रीय त्योहार उत्साह से मनाये जाते थे । पढ़ने के लिए बड़ी संख्या में पुस्तकें मांग ली गई थी । यूसुफ मेहरअली ने पुस्तकों की मानो प्याऊ ही लगा रखी थी । वादविवाद भी हुआ करते थे । साने गुरु एक विनम्र विद्यार्थी की भांति भाषणों को सुना करते थे और उनके नोट बना लेते थे । बच्चे और युवक उनके आसपास बने ही रहते थे ।

धुलिया जेल में आचार्य विनोबा के साथ रहने का सौभाग्य साने गुरु को हुआ था । दोनों के बीच जन्म-जन्मान्तर का स्नेह सम्बन्ध स्थापित हुआ । नासिक जेल में सेनापति वापट के जीवन का गहरा असर गुरुजी के जीवन पर पड़ा । त्रिचनापल्ली में आचार्य भागवत की विद्वता का प्रभाव गुरुजी पर पड़ा । उसी समय आचार्य शंकर राव जावडेकर का प्रभाव पड़ा । दोनों सत्याग्रही समाजवाद मार्ग के पथिक बन गये । आचार्य जावडेकर तात्विक विवेचन कर जो सिद्धान्त प्रस्तुत करते, उसी को भावना के आधार पर साने गुरु समझा देते थे ।

भारतीय जीवन शास्त्र के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि गांधीजी थे और पश्चिमी तत्वज्ञान के सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि थे काल मार्क्स । ये दोनों परस्पर विरोधी नहीं, वरन एक दूसरे के पूरक थे । और उनका समन्वय होना चाहिए । गुरुजी की यही धारणा थी । हिंसा का समर्थक मार्क्सवाद है । उसको सत्याग्रह के आत्मबल से मिलाने से उसमें परिपूर्णता आती है । साने गुरु को ऐसा ही लगता था और ऐसा ही वे कहा भी करते थे ।

रवीन्द्रनाथ की 'साधना' उन्हें बहुत पसन्द आती थी । उनका मानना था

कि यदि सन्त की करुणा और क्रांतिकारी की समाजवाद सम्बन्धी उत्कट भावना एकत्र हो, तो मानवतावादी संस्कृति आकार ग्रहण करेगी। यरवडा जेल में आचार्य जावडेकर के आठ दिन तक गांधीजी के जीवन दर्शन पर अत्यन्त सारगभित भाषण हुए थे। एकाध जिज्ञासु विद्यार्थी ने और साने गुरु ने नोट ले लिए थे और उन्हें लिख डाला था। आचार्य विनोबा और साने गुरु का मंगल संगम 'गीता प्रवचन' पुस्तक के संदर्भ में देखने को मिलता है। उसी प्रकार श्री जावडेकर और साने गुरु का मंगल संगम 'महात्मा गांधी जीवन दर्शन' पुस्तक के रूप में मिलता है।

यरवडा जेल में 15 महीने साने गुरु ने बड़े ही आनन्द और उत्साह से बिताये। वृक्ष में जैसे जवानी फूट पड़ती है उसी प्रकार साने गुरु का जीवन वहां विकसित हुआ। लेकिन वहां से उन्हें नासिक जेल भेज दिया गया। गुरु जी के जाने पर यरवडा जेल के सत्याग्रही जैसे दुखी हुए, नासिक जेल के सत्याग्रही उसी प्रकार गुरुजी के आने पर प्रसन्न हुए। नासिक जेल में गुरुजी ने लोकमान्य तिलक सम्बन्धी जो कीर्तन किया, उसे सुनकर सम्पूर्ण मंडली चकित होकर रह गई। भारत के समस्त स्वतंत्रता आंदोलन का गुरुजी ने उसमें चित्र उपस्थित किया। उसी तरह कृष्ण जन्माष्टमी के दिन कृष्ण चरित्र पर जो कीर्तन गुरुजी ने किया, उसे सुनकर लोगों की आंखें गीली हो गयीं और हृदयभाव विभोर हो गये।

नासिक जेल में गुरुजी ने अनेक विषयों का अध्ययन किया। इनमें दो विषय महत्व के थे। पहला विषय था इस्लाम। इस अध्ययन के आधार पर 'इस्लामी संस्कृति' नाम का एक ग्रंथ तैयार किया, और चीन के विषय में अध्ययन कर 'चीनी संस्कृति' नाम का दूसरा ग्रंथ तैयार किया। ये दोनों ग्रंथ भारत की दृष्टि से विशेष महत्व के हैं। इसके अलावा गुरुजी ने अनेक जीवन चरित्र लिखे। अनुवाद किये। गुरुजी का लिखने-पढ़ने का काम यहां तेजी से चल रहा था। जेल से गुरुजी ने बहुतों को पत्र लिखे थे। कितने अधिक लोगों के साथ गुरुजी का सम्बन्ध था, वह इन पत्रों के देखने से पता चल जाता है। उनके लोकसंग्रह में विविधता के दर्शन होते हैं। सबसे अधिक पत्र वे हैं, जो उन्होंने बालकों और युवकों को लिखे हैं। साने गुरु के पत्रों में उनसे दूर होने का दुख भरा है।

साने गुरु से युवक लोग खुले दिल से बात करते थे। इसका एक किस्सा कहने योग्य है। विवाह की चर्चा चली, तो एक युवक ने गुरुजी से कहा—"अब अगर आपने विवाह करने की बात सोची, तो कन्याओं के पिता की लाइन लग जाएगी।" गुरुजी को एक पुरानी याद आ गई। एक बार उनके

एक मित्र ने गुरुजी से कहा कि जिस लड़की का विवाह नहीं होता, उसे हिस्टीरिया हो जाती है और पागल जैसी बन जाती है। तब गुरुजी ने कहा था कि—'मेरे ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा को तुम जानते हो, लेकिन अगर किसी लड़की का जीवन बर्बाद हो रहा है तो लड़की को बताओ कि मैं शादी करने के लिए तैयार हूं।'

'साने एम० ए० आदि हैं। सज्जन है। यह सुनकर लड़की का पिता प्रसन्न हो जावेगा, लेकिन साने गुरु नौकरी नहीं करते, समाजसेवा का काम करते हैं—यह सुनकर वे इन्कार कर देंगे। कन्या भी क्या कोई लेन-देन की वस्तु है? उसको मानव गिना ही नहीं जाता। मातृ जाति की यह कैसी विडम्बना है!

युवक कहने लगा—"समाचार पत्र मे विज्ञापन तो दीजिये फिर देखिए क्या होता है।"

इसके बाद विज्ञापन का मास्विदा कैसा हो इसकी चर्चा चली। किसी ने कुछ न कुछ सुझाया। साने गुरु ने कहा—"ठहरो, मैं ही विज्ञापन का मस्विदा तैयार कराता हूं।" लिखो तो। "वधू चाहिये। पति को अपनी साड़ी धोने को दे—ऐसी वधू चाहिए।"

यह मस्विदा सुनकर सब युवक हंस पड़े। तब गुरुजी गुस्से में बोले—"हंसने की क्या बात है? घर में मां-बहन, पत्नी नौकरानी की तरह अनेक काम करती है, तब यदि पत्नी अपनी साड़ी धोने के लिए पुरुष को दे, तो पुरुष-वर्ग को बुरा क्यों लगता है? वे घर में बर्तन मांजती-धोती हैं, कपड़े धोती हैं, पाखाना-पेशाबघर साफ करती हैं। तब पुरुष ने उसकी साड़ी धो दी, तो क्या हुआ? स्त्री पुरुष की समानता की यही तुम्हारी भावना है? स्त्री-पुरुष की समता की आप लोग कल्पना ही नहीं करते। फिर भी आप लोग समतावादी कहलाते हैं।"

सभी तरुण भौचक्के रह गये। साने गुरु को समता की लगन थी। सब प्रकार की समता के वे समर्थक थे।

विकृति द्वारा जो विषमता पैदा हो गई है, विज्ञान की सहायता से उसे क्रम-क्रम से कम करते जाना और मानवों के द्वारा पैदा की हुई विषमता को जल्दी से जल्दी कम करने की साने गुरु की इच्छा थी, जिसे वे जल्दी पूरा होते देखना चाहते थे।

10. नये भारत का स्वप्न

21 महीने की कैद के बाद साने गुरु 15 जनवरी 1945 को नासिक जेल से बाहर आये। जेल के बाहर आये कुछ नेता उन युवकों की आलोचना कर रहे थे, जिन्होंने सन् 1942 के स्वातंत्र्य आन्दोलन में जी जान से साथ दिया था। आचार्य जावड़ेकर को और साने गुरु को यह अनुचित लगता था। श्री जावड़ेकर जी ने शबल सत्याग्रह और शुद्ध सत्याग्रह के तात्विक विचार को स्पष्ट किया। उन्होंने युवकों का पक्ष लिया और उनका समर्थन किया। साने गुरु ने गांधीजी के विचारों के आधार पर क्रान्तिकारी युवकों का समर्थन किया।

स्वदेशी आन्दोलन के समय गांधी जी और टैगोर में विरोध हुआ था। विदेशी कपड़ों की होली करना टैगोर उचित नहीं समझते थे। तब गांधी जी ने कहा था—"जनता का क्रोध व्यक्ति से हटाकर वस्तु पर लाने का मेरा प्रयत्न है। इसे मैं अहिंसा ही मानता हूं।"

'भारत छोड़ो' आन्दोलन में मनुष्य की हत्या का मार्ग अपनाया नहीं गया था, फिर भी कुछ लोग बीच में झगड़ा पैदा करने का प्रयत्न करते थे।

साने गुरु ने सारे महाराष्ट्र का दौरा किया। सेवादल और विद्यार्थी संगठन ने दौरे की सारी व्यवस्था की। इस दौरे में साने गुरु शहीदों के घर जाकर उनके परिवार के सदस्यों से मिलते थे, उन्हें सान्त्वना देते थे। उनके व्याख्यान सुनने के लिए अपार भीड़ जुड़ने लगी। इन भीड़ों में युवकों की ही संख्या अधिक रहती थी। साने गुरु के दौरे से सरकारी अधिकारी चिन्तित हुये। गुरु जी को गिरफ्तार कर लिया गया, किन्तु पांचवे दिन ही उन्हें छोड़ देना पड़ा।

साने गुरु लोगों की भावनाओं को समझते थे और उन्हें उभारते थे। उनके भाषणों का जनता पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था। यह देखकर कुछ लोगों को ईर्ष्या होने लगी। वे ऐसा प्रचार करने लगे कि गुरु जी तो मात्र भावना के वश में है। वे चाहते थे कि उनकी यह आलोचना साने गुरु तक पहुचे। इसका उत्तर देते हुये साने गुरु ने कहा था—"भावना एक अत्यन्त गम्भीर वस्तु है। उसका मजाक उड़ाना अच्छा नहीं। जिस व्यक्ति में भावना नहीं, उसे

'मानव' कैसे कहा जाय ?" कुछ लोग गांधी जी पर भी ऐसा ही आक्षेप करते थे, तब उन्होंने कहा था—"भावना का अर्थ क्या ? सारभूत विचार को भावना कहते हैं। बुद्धि जब परिपक्व हो जाती है तब मूल्यवान हो जाती है। वह भावना है।"

साने गुरु युवक कार्यकर्ताओं के लिए सदा चिन्तित रहते थे। श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने युवक कार्यकर्ताओं के लिए 'सर्वेन्टस ऑफ इंडिया' नाम की एक संस्था बनाई थी। स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान अनेक युवकों ने सेवादल, छूआछूत निवारण, किसान संगठन आदि कामों में अपने आप को पूर्ण रूप से लगा दिया था। गुरु जी को उनकी विशेष चिन्ता थी और उनकी मदद करते थे।

गुरु जी के 46वें जन्मदिन के अवसर पर इस कार्य के लिए उन्हें एक निधि देकर उनका गौरव करने का निश्चय खानदेश के कुछ मित्रों ने किया। कुछ बड़े लोग इसके विरोध में थे। किन्तु निधि इकट्ठी की गई और वह निधि विनोबा जी के कर कमलों द्वारा साने गुरु को दी गयी। गुरु जी ने उस निधि को कार्यकर्ताओं के जीवन-निर्वाह के लिए अप्पा साहेब सहस्रबुद्धे को सौंप दी।

1945 में कांग्रेस का हीरक महोत्सव था। कांग्रेस अर्थात् देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य करने वाली संस्था। गांव-गांव में गरीबों को ऊपर उठाने की संस्था। विद्यार्थी वर्ग को इसमें आने का आह्वान किया गया। स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास तथा गांधीजी के नेतृत्व की अपूर्वता लोगों को समझाई गयी।

साने गुरु के साहित्य पर युवक वर्ग मोहित था। उनकी पुस्तकें प्रकाशित होते ही युवकों के हाथों में पहुंच जाती थीं। विश्व विख्यात मानवतावादी लेखक टॉलस्टॉय की पुस्तक का साने गुरु ने "कला अर्थात् क्या ?" नाम से अनुवाद किया, और भारतीय परिस्थिति को ध्यान में रखते हुये उसकी भावपूर्ण प्रस्तावना लिखी। उसमें मराठी साहित्यकारों की लेखन-मर्यादा को स्पष्ट किया। विनोबा जी की गीताई के बारे में जानकारी दी। उन्होंने अपनी यह अपेक्षा व्यक्त की कि महापुरुषों के विचारों को जनता तक पहुंचाने का काम साहित्य को करना चाहिये। महात्मा गांधी ऐसे ही महापुरुष हैं—इस बात को उन्होंने समझाया।

सम्पूर्ण मानव जाति से एकता रखना, समता और बंधुभाव रखना ही गांधी जी का ध्येय है। साने गुरु टालस्टाय के विचारों के आधार पर स्पष्ट किया कि वही व्यक्ति महापुरुष है, जो सम्पूर्ण मानव जाति के हित की बात करता है, जिसे भेदभाव अमंगल सूचक लगते हैं, प्रेम ही जिसकी शक्ति है,

त्याग ही जिसका वैभव है, और जो गरीबों का उद्धार करता है।

कुछ साहित्यकारों ने गुरु जी की इस पुस्तक की कटु आलोचना दो साल बाद की। वैसे देखा जाय, तो 'भारतीय संस्कृति' तथा अन्य पुस्तकों में साने गुरु ने इसी प्रकार के विचार लिखे थे। इन पुस्तकों की हजारों प्रतियां बिक चुकी थीं। इन आलोचकों को इस बात का पता नहीं था। साने गुरु ने इन आलोचकों के कथन पर ध्यान नहीं दिया। जो हो इस निमित्त साहित्य के क्षेत्र में जीवन विषयक मर्यादाओं की काफी चर्चा हुई। साने गुरु जी के साहित्य में जिस 'आंसू' की महिमा गाई गई है, वह 'आंसू' दूसरे ही प्रकार का है। "यवाश्च में, तिलाश्च में गोधुमाश्च में" इस महान् ऋषि के कथन के समान गुरु जी के विचार थे। व्यक्तिगत सुख दुख से न तो उस ऋषि को प्रसन्नता होती थी न अश्रु आते थे। उसे समाज के विशाल वर्ग के सुख दुख की अधिक चिन्ता थी। साने गुरु जी के अश्रु उसी महान् ऋषि के आंसुओं जैसे अलौकिक थे।

ज्येष्ठ व प्रतिष्ठित साहित्यकार साने गुरु जी की इधर आलोचना कर रहे थे, उधर युवकों ने अपने साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद के लिए साने गुरु को चुना। इस समय गुरु जी ने युवकों से बातचीत की। उन्होंने कहा—"मैंने जो कुछ लिखा है, भावना से प्रेरित होकर लिखा है। लिखते समय मैं रोया हूं, दुखी हुआ हूं, रोमांचित हुआ हूं। मानो मैंने लिखते समय अपना रक्त उसमें डाला है। अपने प्राण उसमें डाले हैं। मेरा साहित्य कैसा भी हो, मैंने उसमें अपना रक्त डाला है। इसलिए उसमें रक्त है आंसू हैं। जो मेरे साहित्य को छुयेगा, वह मेरे हृदय को छुयेगा। मेरा साहित्य मेरी भावनाओं की साहित्यक मूर्ति है। तुम सब साहित्य की उपासना करना चाहते थे। तुम एक भी ऐसी पंक्ति न लिखो, जो मात्र औपचारिक हो। जो लिखो, उसमें अपने प्राण डाल दो। मात्र लिखने के लिए कुछ भी न लिखो। जब कुछ लिखने की तुम्हारी प्रबल इच्छा हो, हृदय में वेदना हो तभी लेखनी हाथ में लो। जब हृदय में भावनायें उमड़ती हों, आंखें भरी हों, तभी तुम लिखो। मनुष्य का यह सौभाग्य है कि हाथ से जो कुछ भी वह करता है, वह पहले उसके हृदय में होता है। भारतीय जीवन में आज सर्वत्र सत्य की, प्रामाणिकता की और प्रबल इच्छा की परम आवश्यकता है।"

आगे साने गुरु ने युवकों से कहा—"तुम अपनी लेखनी को मुट्ठी भर लोगों के रागरंग के लिए, मनोरंजन के लिए साधन मत बनाओ। तुम्हारी लेखनी सम्पूर्ण जनता का प्रतिनिधित्व करे। जनता के पक्ष को लेकर वह लिखे। तुम्हारी लेखनी के लिए विशाल क्षेत्र पड़ा है। बड़े-बड़े विचार हैं, गरीब जनता है, भक्त और विराट दुनिया सामने है। अगर तुम्हारी मन-बुद्धि संवेदनशील है, संस्कारमय

हैं, तो वातावरण के अदृश्य हवाओं को भी तुम महसूस करोगे। प्रत्येक वस्तु के चारों ओर विचार का, भावना का वलय होता है। साहित्यकार का यह कर्तव्य है कि उन विचारों की शक्ति को प्राप्त करे और फिर अपने लेखन के द्वारा उसे घर-घर पहुंचा कर क्रान्ति पैदा करे। जनता की मनोदशा को, उसके विचारों को बदलना एक महत्वपूर्ण कार्य है। भारत के प्राचीन इतिहास का अध्ययन करो और वर्तमान इतिहास को आंख खोल कर देखो। उससे तुम्हें शक्ति प्राप्त होगी। प्रकृति से प्रेम करो। प्रकृति तो अपनी माता है। सारे विश्व की माता है। वह हमारी मनबुद्धि या पोषण करने वाली है। उसकी उपेक्षा मत करो। प्रकृति से प्रेम किये बिना साहित्य में न भव्यता आ सकती है न व्यापकता। न उसमें ताजगी होगी और न उसमें मिठास। प्रकृति के सहृदय मित्र बनो। नीचे-ऊपर सम्पूर्ण विश्व को देखो। रात्रि में आकाश के काव्य को देखो। भारत की नदियों ने, वर्षा ने, वन-उपवन ने वेद-उपनिषदों को जन्म दिया है।"

उत्कटता साने गुरु के जीवन का स्थायी भाव था। वे कहते थे--"उत्कटता के बिना कुछ नहीं होता। साहस, ऊंचे-ऊंचे विचार, विशाल ध्येय, अनवरत अभ्यास, गहरा अनुभव प्राप्त कर सम्पूर्ण दृष्टि से जीवन को उदात्त और समृद्ध बनाओ। उसे तेजस्वी बनाओ। निर्भय बनो। सहानुभूति पूर्ण बनो। निर्भय और समृद्ध जीवन होने पर तुम्हें किसी प्रकार का अभाव खलेगा नहीं। तब कल्पना, उपमा, दृष्टान्त सब अपने आप आ जायेंगे। प्राचीन और आधुनिक सभी ग्रंथों का अध्ययन करो। जिस तरफ से जो मिले, जिस किसी से कुछ सीखने को मिले, उसे आदरपूर्वक प्राप्त करो और उसे बढ़ाओ। फूलने वाली अधखिली कली बन्द-सी दिखती है, मगर उसके भीतर रंग और सुगन्ध इतनी भरी होती है कि खिल जाने पर सम्पूर्ण, रूप विकसित हो जाता है।"

अपने सामने भारत के भविष्य के चित्र को बनाते समय साने गुरु कहते हैं—"भारत के सारे लोग मिलजुल कर आनन्द से रह रहे हैं। द्वेष समाप्त हो गया है। लोग एक दूसरे की संस्कृति का अध्ययन करते हैं, अनेक भाषाओं को सीख रहे हैं। विकास करने का प्रयत्न कर रहे हैं। ज्ञान-विज्ञान बढ़ रहा है। कला विकसित हो रही है। उसकी उन्नति में सम्पूर्ण जनता लगी हुई है। व्यक्तिगत स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा को स्थापन करने वाला समाजवाद आ गया है। वर्गवाद समाप्त हो गया है। छूत-अछूत का विचार इतिहास का विषय बन गया है। गांव समृद्ध हो गये हैं। बड़े-बड़े उद्योग राष्ट्रीयकृत हो गये हैं। प्रकृति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनन्त हाथ फैलाकर राष्ट्र आगे बढ़ रहा है। अज्ञान, रूढ़ियां, रोग समाप्त हो गये हैं। प्रयोग चल रहे

हैं। हिमालय पर युवक चढ़ाई कर रहे हैं। ज्ञान प्राप्त करने के लिए सागर के तल तक जा रहे हैं। नचिकेता की तरह ज्ञान के लिए वे मृत्यु का वरण करने के लिए तैयार हो रहे हैं।"

"इस प्रकार के शास्त्रवादी और ध्येयवादी भारत को अपनी दृष्टि के सामने उपस्थित रहने दो। तुम्हारे स्वप्नों, आशाओं और आंकाक्षाओं से ही भारत को ऐसा बनना है।"

मजे की बात यह थी कि जाने वाली पीढ़ी तथा कथित साहित्यकारों के साथ थी और आने वाली पीढ़ी साने गुरु के साथ खड़ी थी।

इसी कालावधि में साने गुरु ने अपने जीवन के रहस्य को खोलने वाला सन्देश लिख दिया था। वे कहते हैं--

"जीवन का मैं एक नम्र उपासक हूं। आस पास का सारा संसार सुखी और समृद्ध बने। ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न बने और कलात्मक बने। मेरी एक मात्र इच्छा यही है कि सब सामर्थ्य सम्पन्न हों, प्रेममय हों, मेरा लिखना, बोलना, मेरे विचार, मेरी प्रार्थना मात्र इसी ध्येय के लिए होती है।"

11. विट्ठल भगवान की मुक्ति

'भारत छोड़ो' आन्दोलन के पश्चात् सन् 1946 में चुनाव आये। प्रादेशिक और केन्द्रीय विधि मंडल के लिए चुनाव हुये। कई दृष्टियों से इन चुनावों का विशेष महत्व था। ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादी तानाशाही का विरोध करना था, साथ ही यह बताना था कि कांग्रेस ने जो स्वतंत्रता आन्दोलन छेड़ रखा है उसके पीछे भारत की सम्पूर्ण जनता है। उसके साथ ही लोगों के सामने स्वतंत्र भारत की कल्पना को रखने और उसे समझाने का यह एक मौका पर्व के समान महत्व का था। साने गुरु जैसा निष्पक्ष लोकशिक्षक ऐसे मौके पर चुपचाप कैसे बैठा रह सकता था? साने गुरु ने कांग्रेसी उम्मीदवारों के पक्ष में तूफानी दौरे किये। सम्पूर्ण जनता का समर्थन कांग्रेस को मिला। सभी प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल स्थापित हुये। चुनावों में कांग्रेस की विजय को देखकर और दूसरे विश्वयुद्ध के बाद की परिस्थितियों को देखकर ब्रिटिश सरकार ने स्वराज्य देने सम्बन्धी बातचीत शुरू की। 'भारत छोड़ो' आन्दोलन सम्बन्धी प्रस्ताव में गांधीजी ने कहा था कि भारत की यह स्वतंत्रता सम्पूर्ण विश्व के गुलाम देशों के स्वतंत्र होने के लिए मार्गदर्शन का काम करेगी और ऐसे ही लक्षण भी दिखाई दे रहे थे। लेकिन क्या गोरे लोगों के हाथों से निकल कर काले हाथों में सत्ता का आना मात्र स्वतंत्रता थी? फिर स्वराज्य का क्या अर्थ? क्या फिर वही नौकरशाही? क्या फिर जनता विमुख कार्य चलेंगे? आर्थिक और सामाजिक समता के क्षेत्र में कुछ शीघ्र कदम रखे जायेंगे अथवा पुनः धैर्यधारण करने के लिए उपदेश सुनने पड़ेंगे? कांग्रेस संस्था सत्ता को हथियाने में क्या लगी रहेगी और क्या फिर जनता की, जनतंत्र की उपेक्षा होगी? सरकार की तरफ से जो कुछ थोड़ा-बहुत मिले, उसे स्वीकार कर उसी का ढोल पीटना और चुपचाप होकर क्या बैठना होगा? साम्प्रदायिकता का सर्प फिर अपना फण उठा रहा था? उसको दबाने का काम क्या नहीं करना होगा?

जन्म के आधार पर विषमता का विष भरा फल ही तो अस्पृश्यता है। जन्म के आधार पर जातिवाद को स्वीकार करने से समाज की उन्नति का

मार्ग कुंठित होता है। शरीर में रक्त संचार रुका कि शरीर मृतप्राय होने लगता है। ठीक उसी तरह जब समाज में संचार रुकता है, तब समाज भी मृतप्राय हो जाता है। जन्म के आधार पर अगर जाति कायम रही, तो कैसा फिर जनतंत्र और कैसी फिर व्यक्तिगत स्वतंत्रता ? कैसी समता और कैसा समाजवाद ? जिस वस्तु को हमें सहज भाव से दूसरे को देना चाहिये, उसका देना टाल कर वही वस्तु दूसरे से मांगना कहां का न्याय है। अपने हरिजन और दलित भाइयों को समता का अधिकार न देकर स्वयं वर्णभेद रहित समाज का अधिकार मांगने लगें, तो स्वयं ही हंसी के पात्र बन जायेंगे। यह विचार साने गुरु को विशेष परेशान कर रहा था।

शहीदों के जीवन के सम्बन्ध में बोलते समय अस्पृश्यता निवारण की बात साने गुरु बड़ी आस्था और दृढ़ता से कहते थे। कुछ मन्दिर और कुंए सब के लिए खुल गये। छात्रावास बने। लेकिन ये सारे काम बहुत धीरे हो रहे थे। अप्पा साहेब पटवर्धन, बाबा फाटक, विनोबा जी इत्यादि ने भंगीकाम और मरे पशुओं की खाल छीलने के काम किये, किन्तु यह प्रश्न इतना महान और उलझा हुआ है कि उनके वे सारे काम महत्वहीन और तुच्छ ही रहे। उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। उस समय विनोबा जी ने-कार्यकर्ताओं के सामने अपना मनोभाव इन शब्दों में व्यक्त किया था--"सन् 1932 में जातिवाद के समझौते के विरुद्ध गांधी जी ने जान की बाजी लगा दी थी। गांधी जी और डा० अम्बेडकर के बीच यरवदा जेल में समझौता हुआ। अस्पृश्यता निवारण का महत्व उस समय समझ में आया। उस बात को आज कितने वर्ष बीत गये हैं। इसके सम्बन्ध में अगर गांधी जी सवाल करें, तो क्या हमारे पास उसका उत्तर है ?"

इस कथन को सुनकर साने गुरु बहुत चिन्तित हो गये।

खानदेश के एक कार्यकर्ता सीताराम भाऊ चौधरी विनोबा जी से मिलने गये थे। विनोबा जी ने उन्हें एक पत्र साने गुरु के लिए दिया। उसमें उन्होंने लिखा था कि मन्दिर प्रवेश के बारे में कार्य करने के लिए उन्होंने सीताराम भाऊ से कहा है। सीताराम भाऊ पंढरपुर के वारकरी थे। वे कार्तिक एकादशी की यात्रा में गये और मन्दिर प्रवेश और अस्पृश्यता निवारण के सम्बन्ध में प्रचार करने लगे। साने गुरु की उनको याद आई। उन्होंने साने गुरु के पास पत्र भेजा। उसमें लिखा --"आप पंढरपुर आइये। आप के आने से मेरी हिम्मत बढ़ेगी।"

यह पढ़कर साने गुरु अधिक व्याकुल हो उठे। पंढरपुर के विट्ठल मन्दिर सभी लोगों के लिए खुल जावे, इसके लिए कार्तिक एकादशी से प्राणांतिक

उपवास करने का अपना विचार साने गुरु ने घोषित किया, जिसे सुनकर सब व्याकुल हो उठे।

साने गुरु का कथन सत्य था। जो मानसिक क्रांति होनी चाहिये थी, वह हुई नहीं थी। साने गुरु ने कहा—"हमें अपनी मृत्यु के द्वारा अब प्रचार करना चाहिये। एक-एक सामाजिक अन्याय को दूर करने के लिए शहीद होने के लिए अगर लोग निकलें, तो समाज में जागृति होगी।"

साने गुरु के निश्चय को पलटना कठिन था, फिर भी कुछ लोग उनसे मिलने गये। उनका कथन था कि छः माह के लिए साने गुरु अपना उपवास टाल दें और इस छः माह की अवधि में लोकमत को अनुकूल करने की दिशा में भरसक प्रयत्न किया जावे। यदि इतना करने पर भी विट्ठल मन्दिर का द्वार सबके लिए न खुले, तो साने गुरु को उनके निश्चय से रोका न जावे। ऐसा तय हुआ और साने गुरु का लोक शिक्षण कार्य शुरू हो गया।

साने गुरु ने लिखा है—'पंढरपुर महाराष्ट्र का हृदय है। महाराष्ट्रीय जीवन का वह केन्द्र बिन्दु है। इस केन्द्र बिन्दु में यदि सफलता मिली, तो सारे महाराष्ट्र में प्रकाश फैल जावेगा। सन्तों के कारण पंढरपुर का महत्व बढ़ा है। सन्त क्रांतिकारी थे, करुणा सागर थे। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने लोगों के मन का भेदभाव नष्ट किया। उनके आगे हमें कदम रखना है। समय के साथ अपने को बदलो, नहीं तो मरना होगा। यह तो भाग्य का विधान है। जब हमें सन् 1947 में रहना है, तब क्या हमें अपनी दृष्टि त्रेतायुग पर रखनी होगी? वर्तमान युग में नये विचारों का तूफान आ रहा है। सर्वत्र समता की बात कही जा रही है। ऐसी अवस्था में छुआछूत के बारे में सोचते रहना उचित नहीं। समानता तो धर्म की आत्मा है। भगवान के सामने सब बराबर हैं। न कोई छोटा, न कोई बड़ा और न कोई कनिष्ठ। एक मां है, उसके चार बच्चे हैं। उनमें से तीन मां के पास बैठते हैं। वे चौथे को मां के पास नहीं आने देते। ऐसे समय में मां के हृदय पर कैसी गुजरती होगी? उसे कैसी वेदना होती होगी! दूर बैठे बच्चे के लिए मां व्याकुल होती है। फिर भगवान तो मां से भी ज्यादा ममतामय है। नारद मुनि भी कहते हैं—"भगवान स्नेह की मूर्ति है, प्रेममय है।"

"मनुष्य दूर हो—कहने वाला भगवान को ही दूर रहने के लिए कहता है। मुख्य बात यह है कि हमें अपनी मनोरचना बदलनी चाहिये। लोगों की मनोरचना बदलने के लिए ही मेरा सारा प्रयत्न, मेरी सारी दौड़-धूप है, मेरा उपवास है।"

"पंढरपुर मन्दिर का खुलना तो एक प्रतीक मात्र है। उस मन्दिर के खुलने

का अर्थ है हम सबके हृदयों का खुल जाना। सबकी जहां प्रतिष्ठा हो, वही धर्म है, स्वतंत्रता है। मैं अब उतावला हो रहा हूं। अब देर करने की आवश्यकता नहीं। इस काम को समय तो आगे ले ही जायेगा, लेकिन उससे पहले ही विचार बदलने में हमारा पुरुषार्थ है, अक्लमन्दी है।"

साने गुरु गांव-गांव जाकर कुछ लोगों को समझाते थे। गुरु जी व अन्य साथियों के भाषण सुनकर लोग हाथ उठा-उठाकर पंढरपुर के मन्दिर का द्वार सबके लिए खुला रहे, इस सम्बन्ध में अपनी अनुमति प्रकट करते थे।

अन्त में साने गुरु युवकों से कहते—"मैं सभी तरुणों का आह्वान करता हूं। इस अस्पृश्यता को सहन नहीं करो। हरिजन के बच्चों के साथ मिलो-जुलो। एकता का, बन्धुभाव का तथा समता का महान मंत्र लेकर सब जगह जाओ। जो तारे वह तरुण। तरुण शब्द की यही व्युत्पत्ती है। अस्पृश्यता निवारण की संजीवनी लेकर इस राष्ट्र का उद्धार करो। यदि सब को इकट्ठा कर सबको साथ लेने का विचार करोगे, उन्हें साथ लेकर निकलोगे, तो नव मंगल प्रभात अवश्य आवेगा। नवीन स्वतंत्रता का, नवीन युग का स्वागत करने के लिए प्राचीन भारत सामने मिलेगा।"

साने गुरु के इस प्रकार के कथन सर्वत्र गूंज रहे थे। अनेक गांवों में मन्दिरों के द्वार सबके लिए खुल गये, कुछ खोल दिये गये। सवर्ण नाई हरिजनों की हजामत करने को तैयार हो गये। होटलों ने हरिजनों के साथ बराबरी का व्यवहार करने की घोषणा की। जनता के शिक्षण का यह महान आन्दोलन था। साने गुरु की मनोदशा ऐसी थी कि वे कहते थे 'हे भगवान अब मैं अधिक समय तक धीरज नहीं धर सकता।

कुछ लोग साने गुरु का मूक विरोध करते थे, तो कुछ लोग साने गुरु को समझाने का प्रयत्न करते थे। गुरु जी की उत्कटता को कोई समझ ही नहीं पाता था।

लाखों लोगों की सद्भावना को प्राप्त कर साने गुरु पंढरपुर आये। चन्द्रभागा के तट पर विशाल सभा का आयोजन हुआ। साने गुरु के हृदय की समस्त भाव राशि उस दिन सरिता बनकर बहने लगी। भाई-भाई साथ-साथ रहें, इसके समर्थन के लिए शास्त्रग्रंथों की आवश्यकता नहीं। अद्वैत का सन्देश देने वाला हिन्दू धर्म अछूतों को अपनावे या नहीं, इस पर शास्त्रार्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं है। वैशाख सुदी एकादशी एक मई 1947 का दिन आया। साने गुरु पंढरपुर के तनपुरे महाराज के मठ में उपवास करने बैठे। लोगोंकी भीड़ की भीड़ वहां पहुंचने लगी। पत्रों का ढेर लग गया। जब लोग साने गुरु से उपवास छोड़ने का आग्रह करते तब वे कहते थे "कुछ लोग

कहते हैं कि उपवास छोड़ दो। 'अपने संकल्प के लिए मर जाओ और कृतार्थ हो जाओ'—ऐसा कहने का किसी में साहस नहीं है क्या ? सब के सब जिन्दगी के उपासक, शरीर के पूजक !"

महात्मा गांधी के प्रति साने गुरु की अनन्त श्रद्धा थी, इसीलिए कुछ लोग गांधी के पास पहुंचे और स्वार्थवश उपवास छुड़वाने के लिए गांधी जी को कुछ की कुछ जानकारी दी। उपवास के दूसरे दिन दिल्ली से गांधी ने तार दिया —"जो मुझे जानकारी दी गई है, उसे देखते हुये उपवास का तुम्हारा निश्चय ठीक नहीं है। पंढरपुर का मन्दिर जल्दी ही हरिजनों के लिए खुल जायेगा। किसी भी बड़े व्यक्ति ने अथवा असंख्य लोगों ने आक्षेप किया हो, तो उसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। कृपया उपवास को रोक दें और लौटते तार से मुझे सूचित करें।"

यह सब जानकर साने गुरु को अत्यन्त दुख हुआ। उन्होंने उपवास को चालू रखा और अत्यन्त भावना से गांधी जी को पत्र लिखा - "आपकीसलाह का मैं पालन नहीं कर पाता हूं। मुझे क्षमा करें। तार में लिखे समाचार को पढ़ कर बहुत दुख हुआ। मैं बड़े दुःख से यह पत्र लिख रहा हूं, इसे आप जान जायेंगे। किन्तु कुछ क्षण ऐसे होते हैं जब चाहे सारा संसार विरोध करे, उस समय अपने प्रण पर अटल रहा जाय। मैंने यह आप से ही सीखा है। बापू ! आपके पास अनन्त दया है। आपकी दृष्टि से भले मैं गलती करता होऊं परन्तु मैं अपने को धोखा देने की इच्छा नहीं रखता। इसलिए आप ही मेरा समर्थन करें। यही मैं आपके प्रिय पूज्य चरणों के निकट प्रार्थना करता हूं।"

जयप्रकाश नारायण ने एक पत्रक निकाल कर अपनी वेदना और चिन्ता प्रकट की। महात्मा गांधी, कांग्रेस के नेता, तथा बम्बई सरकार ने साने गुरु को उपवास छोड़ने की सलाह तो दी, किन्तु बिट्ठल मन्दिर के अधिकारियों से एक शब्द भी नहीं कहा !

केन्द्रीय विधान सभा के अध्यक्ष दादा साहेब मावलंकर तथा अन्य लोगों ने गांधी जी को गलतफहमी को दूर किया, और मन्दिर के पुजारियों और अधिकारियों को बार-बार समझाया, तब उन्होंने मन्दिर सबके लिए खोल देने का प्रतिज्ञा पत्र लिख कर न्यायालय को दिया। साने गुरु के उपवास का यह दसवां दिन था। मन्दिर प्रवेश के मार्ग में आने वाली अड़चनें दूर हो जाने पर साने गुरु ने 10 मई 1947 को रात्रि के साढ़े आठ बजे अपना उपवास समाप्त किया।

गांधी जी ने जब यह सब सुना तो उस दिन की प्रार्थना सभा में उन्होंने कहा—"आज एक और खुशी की बात है। पंढरपुर का प्राचीन और प्रसिद्ध मन्दिर हरिजनों के लिए खोल दिया गया है। इसका सारा श्रेय साने गुरु को है। हरिजनों के लिए यह मन्दिर खुल जाये, इस निमित्त उन्होंने आमरण उपवास किया था।"

साने गुरु जी का उपवास सफल हुआ समाचार-पत्रों में यह सुखद समाचार पढ़कर सारे महाराष्ट्र में आनन्द की लहर आ गयी। पंढरपुर के विट्ठल भगवान भी विषमता की बेड़ियों से मुक्त हो गये।

12. भारतीय जनता को यह सिखाना है

पंढरपुर के विट्ठल मन्दिर का द्वार सबके लिए खुलवाने का जो दिव्य कार्य साने गुरु जी ने शुरू किया था, वह पूर्ण हो गया। लोगों के मन की शंका दूर हो गई। मगर समाचार पत्रों में रोज छपने वाले समाचार मन को दुखी करने वाले होते थे। धर्म के नाम पर व्यक्ति, व्यक्ति को मारने के लिए तुला हुआ था। बहुत विनाश हो रहा था। इस अधर्म को समाप्त करने का काम गांधी जी अकेले कर रहे थे, जो अतुलनीय था। उनके शान्त और निर्भय जीवन की मानो कसौटी हो रही थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर के गीत "एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे, के अनुसार गांधीजी का जीवन चल रहा था। यह सब सुनकर साने गुरु जी बहुत दुखी होते थे।

जिस स्वतंत्रता की प्रतीक्षा लोग बड़े उत्साह से कर रहे थे, वह स्वतंत्रता प्राप्त हुई। 15 अगस्त 1947 स्वर्णिम दिवस था। अखंड भारत के रहते अगर स्वराज्य आया होता, तो सोने में सुहागा होता। महात्मा गांधी उस दिन राजधानी में नहीं थे। वे बंगाल में लगी हुई साम्प्रदायिकता की आग को बुझाने में तन-मन से लगे हुए थे। इस काम के लिए उन्होंने जान की बाजी लगा रखी थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारत को 'महामानवों का सागर' की संज्ञा दी है। मगर इस समय मानवों की क्षुद्रता के दर्शन सीमावर्ती क्षेत्र बंगाल में ही हो रहे थे।

साने गुरु उस दिन कहां थे ? वे पुणे के एक कमरे में भूमिगत रूप से रह रहे थे। दुखी मन से एक-एक दिन बिता रहे थे। सत्तरह साल पहले अत्यन्त उत्साह से 'मंगल-मंगल त्रिवार मंगल' गीत को गाते हुये नाचने वाले साने गुरुजी उस दिन मौन थे। कमरे में उन्होंने राष्ट्रध्वज लगाया था, वन्दनवार बांधी थी। दिन भर वे देश के लिए और गांधीजी के लिए प्रार्थना करते रहे। शाम को उन्होंने मोमबत्तियां जलाईं। वे हमेशा कहा करते थे कि मोमबत्ती की तरह स्वयं जलकर जगत को प्रकाश देने की मेरी मनोकामना है। उनके द्वारा जलाई मोमबत्तियां उसी की प्रतीक थीं।

महात्मा गांधी सम्प्रदायवाद को समाप्त करने में लगे थे। केन्द्रीय विधान

परिषद में भारत का भावी संविधान तैयार किया जा रहा था। द्वेष भाव पैदा करने का काम कुछ लोग कर रहे थे। 30 जनवरी 1948 के दिन प्रार्थना स्थल पर नाथूराम गोडसे नामक एक सिरफिरे व्यक्ति ने गांधीजी की हत्या कर दी। सारा विश्व इस घटना से कांप उठा। साने गुरुजी को लगा, मानो उनके जीवन का सूर्य डूब गया।

राष्ट्रपिता की हत्या एक भीषण घटना थी। इसकी प्रतिक्रिया महाराष्ट्र में विपरीत और तीव्र हुई। मन में छिपे सम्प्रदायवाद ने भयंकर रूप धारण किया। उपद्रव बढ़ गये।

साने गुरु जी ने आत्मशुद्धि के लिए और सम्प्रदायवाद को समाप्त करने के लिए 21 दिन का उपवास किया। और सम्प्रदायवाद का विरोध करने के लिए आंदोलन के रूप में उन्होंने 'कर्तव्य' नामक सांध्य दैनिक शुरू किया। इसके मुखपृष्ठ पर गांधीजी का चित्र रहता था और उसके नीचे लिखा रहता था—

"हृदय में तुम्हारा स्मरण कर कर्तव्य कर्म करता रहूंगा।"

साने गुरुजी को लगा कि सम्प्रदायवाद को रोकने के लिए विनोबा जी सारे महाराष्ट्र में घूमें। उन्होंने विनोबा जी से भेंट की। महाराष्ट्र के जन जीवन में प्रेमभाव फिर से कैसे पैदा हो—यह प्रश्न था। किसके पास अमृत है? उस अमृत को लेकर क्या विनोबा नहीं आयेंगे? विनोबा जी के आने से आश्रम जैसा अनुशासन आवेगा। पूजा-अर्चा होगी। हजारों युवक, सेवादल सरकारी अधिकारी, कांग्रेस के कार्यकर्ता और समाजवादी कार्यकर्ता आयेंगे। विनोबा रूपी सूर्य के चारों ओर तारों के समान घूमेंगे, और सब ओर मंगलमय पवित्र वातावरण होगा, शान्ति फैलेगी। झगड़े समाप्त हो जायेंगे। लोग एक-दूसरे से द्वेष नहीं करेंगे। विनोबा जी को बुलाने में साने गुरुजी की यही भावना थी।

साने गुरुजी कहा करते थे कि सेवादल मेरा प्राणवायु है। वे चाहते थे कि सेवादल राष्ट्र के निर्माण कार्य में लगे। बच्चों से उन्होंने कहा था—"सेवादल के निर्भय दोस्तो! जटायु का प्राण जैसे उसके पंख में था, वैसे ही सेवादल का प्राण सेवाभाव में है। जहां भी जाओ, अपने ध्येय का प्रचार करो। हनुमान के हृदय में राम थे, तुम्हारे हृदय में सेवा रूपी राम हों। हाथ सेवा का काम करते रहें। सबको मित्र बनाओ। अछूतों के पास जाओ। बस्ती, नालियां सारा गांव साफ करो। संडास साफ करो। सेवा भावना को अपने जीवन में उतारो।"

सान्ध्य दैनिक 'कर्तव्य' का तथा अन्य कार्यों का बहुत भार साने गुरुजी पर पड़ रहा था। उनके दोस्तों ने उन्हें आराम करने की सलाह दी। 'कर्तव्य'

बन्द हो गया। किन्तु सम्पूर्ण देश की दुखद परिस्थिति देखकर उन्हें आराम करना भाता नहीं था। उन्होंने फिर से तैयारी करके 15 अगस्त 1948 को 'साधना' नाम का साप्ताहिक शुरू किया। उसके सम्बन्ध में उन्होंने लिखा--

"लिखना मेरा स्वधर्म है। मगर वह मेरी जीवन व्यापी वृत्ति नहीं है। मैं सफाई कार्य का उपासक हूं। 'साधना' चलाकर मेरा प्रयास है कि मेरे विचारों को जनता अपनावे। मैं साहित्य की नहीं, जीवन की सेवा कर रहा हूं।"

स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा—"स्वतंत्रता का अर्थ है सब के विकास का अवसर, सुखी और संयमी होने का साधन, सम्पूर्ण देश में न कोई दुखी रहे, न कष्ट भोगे, सबको स्वाभिमान के साथ जीवन बिताने का अवसर मिले, उन्नति के किसी भी काम में गरीबी के कारण अड़चन न आवे, ज्ञान-विज्ञान से सारा देश प्रकाशित हो जावे, स्वच्छता से स्वास्थ्य-सुधार हो, सब को न्याय मिले, सबको भरपेट भोजन मिले, रिश्वत समाप्त हो, उद्धत होकर कोई किसी से व्यवहार न करे, भेदभाव रहित व्यवहार हो, सबको ऊंचा सिर रखकर चलने का अधिकार रहे। सबको खाना-कपड़ा और रहने के लिए मकान मिले। अगर कोई खेती करना चाहता है और यदि उसके पास जमीन नहीं है, तो उसे जमीन मिले, मजदूरों का हित पहले सोचा जाय, अहिंसक संगठन बनाने की छूट हो, सरकार की ओर से किसी पर दबाव न डाला जाय। मजदूर अपना स्थान समझ ले, मालिक उनके साथ नम्रता का व्यवहार करें, दोनों मिलकर रामराज्य की स्थापना करें।

स्वतंत्रता में हमें यह सब करना चाहिए। नए संसार की रचना करनी है। बड़ा काम है। इसे करने के लिए सबको संयम सीखना होगा।

स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी करना नहीं है। स्वतंत्रता एक बड़ी भारी जिम्मेवारी है। एक-दूसरे की भावना को समझना होगा, उसका आदर करना होगा। मेरी जाति, मेरा प्रदेश, मेरी भाषा, मेरा धर्म— इसी की रट लगाना उचित नहीं। सबको अखिल भारतीय दृष्टि रखनी होगी। भारतीय ही नहीं, हमें अखिल भारतीय बनना होगा। आगे चलकर हमें विश्व के नागरिक बनना है। क्षुद्र विचार मन में नहीं आने चाहिए। हमारी दृष्टि विशाल हो, सब के प्रति सहानुभूति हो तभी भारतीय संस्कृति में बहार आवेगी।

अब हमें स्वतंत्र भारत की भव्य इमारत खड़ी करनी है। भाषावार प्रान्त रचना पहले से ही तय है। ऐसा करते समय दूसरे के प्रति द्वेष भावना न हो। प्रेमभाव रहे, सहकार्य रहे। हर एक इसका विश्वास करे कि भारत का हृदय एक है। भगवान सहस्रशीर्ष-सहस्राक्ष कहा जाता है, मगर उसे 'सहस्र हृदय' कभी नहीं कहा जाता। ईश्वर का हृदय एक ही है। उसी प्रकार भारत के

प्रान्त अनेक होते हुए भी उसका अन्तःकरण एक ही है।

हमारे व्यवहार में नतिकता की तीव्र भावना होनी चाहिये। स्वराज्य कोई खेल नहीं है, एक गम्भीर बात है। हमको जनता का कल्याण करना है, न कि किसी जाति या पंथ का बोलबाला करना। स्वराज्य में सार्वजनिक नीति की और न्याय की प्रतिष्ठा रखनी है। अन्यायी कानूनों के विरुद्ध हम जनमत तैयार कर सकते हैं, मगर जो कानून जनता के लिए बने हैं, उन्हें तोड़ना महापाप है। वह मेरे पक्ष का, मेरी जाति का, मेरे प्रान्त का, मेरा रिश्तेदार, मेरा मित्र है, न्याय करते समय उनका विचार करना उचित नहीं है। जनता को यही सिखाना है और नेता को अपने व्यवहार में यही दिखाना है।

हम अभी सारे राष्ट्र से सारे समाज से ऐसी दृष्टि की आशा नहीं रख सकते। लेकिन जब तक यह दृष्टि नहीं आती, जनतंत्र एक मजाक बना रहेगा प्राप्त किया हुआ स्वराज्य यदि कायम रखना है, तो संकीर्णता, क्षुद्रता, स्वार्थ आदि को हमें दूर करना ही होगा। सार्वजनिक काम करने की कुछ तो भावना हम में जागृत होनी चाहिए। स्वराज्य के महान साधन से हमें मानवता को विकसित करना है। संस्कृति को समृद्ध बनाना है।

जीवन एकांगी है। जीवन के क्षेत्र में एक साधक के समान हमें व्यवहार करना है। अपने को दिनोदिन अच्छा बनाना ही पुरुषार्थ है। मैं अच्छा बनूंगा, और अधिक अच्छा बनूंगा— इसी की लगन होनी चाहिए। जीवन कैसे अच्छा, समृद्ध और बाहर-भीतर सम्पन्न बने—सोचना होगा। मैं और मेरे का ढोल पीटते हुए, दूसरों के सुख-दुख का जब हम विचार करेंगे, सेवा करेंगे, दूसरों के अच्छे गुण हम लेंगे, सबका स्वागत करेंगे, सबसे मिलकर रहेंगे, तभी अच्छा बनने का मार्ग हमें मिलेगा। जनता को यह सब सीखना है।"

साने गुरुजी शब्द की शक्ति को जानते थे। शब्दों की मर्यादा भी उन्हें मालूम थी। समाज के अनेक वर्गों को सैकड़ों वर्षों से शब्द शक्ति से दूर रखा गया, इसलिए वे अन्धकार में रहे। सन्तों ने इस मर्यादा को तोड़ने का प्रयत्न किया। आत्मविश्वास पूर्ण तुकाराम का कथन है कि वेदों का अर्थ सिर्फ हमें ही मालूम है और उसका भार अपने सिर हम लेते हैं। भाषा के समान ही प्रभावशाली साधन कर्म होता है। गांधीजी ने इसी को रचनात्मक कार्य कहा। जहां-जहां रचनात्मक कार्य होता था, उसके कार्यकर्ताओं की बिना प्रशंसा किये साने गुरुजी नहीं रहते थे। साने गुरुजी उन लोगों को समाज के अज्ञात आधार-स्तम्भ मानते थे।

कभी-कभी स्वयं पहुंचकर उन कार्यकर्ताओं से बातचीत करते, कभी उनकी मदद करते थे। बाबा आमटे जी के आनन्द वन को ऐसी ही सक्रिय सद् इच्छा

व्यक्त की थी। महाराष्ट्र के अनेक कार्यकर्ताओं के लिए साने गुरुजी विश्वास-पात्र थे।

रचनात्मक कार्य तेजस्वी है—ऐसा साने गुरुजी चाहते थे। कमजोर रचनात्मक कार्य उन्हें पसन्द न था। उनका मानना था कि रचनात्मक कार्य यदि संघर्षपूर्ण नहीं होगा, तो वह सफल न होगा। वे मानते थे कि ऐसे कार्य लोकशिक्षा का भी काम करते हैं। इसलिए वे शान्ति के साथ संघर्ष करते रहते थे। किसान-मजदूरों के आंदोलन को वे शिक्षा का ही एक साधन मानते थे। वे ऐसे कार्य को लिखने और भाषण देने के समान ही मानते थे। राजनीति की दृष्टि से उनका व्यक्तित्व गांधीजी के व्यक्तित्व से मिलता-जुलता था। वे स्वयं सत्ता के आकांक्षी नहीं थे। राजकाज के रोजाना कामों में साने गुरुजी कभी ध्यान नहीं देते थे। लेकिन राजनीति जीवन के सभी पहलुओं को छूती है इसलिए उन्होंने उसकी अपेक्षा भी नहीं की।

13. लगन

मराठी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन 14 मई 1949 को पुणे में हुआ। आचार्य जावड़ेकर इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे। ऐसे कार्यक्रमों से दूर रहने वाले साने गुरु इस अधिवेशन में उपस्थित रहे। इतना ही नहीं, उन्होंने अपना 'आन्तर भारती' का प्रस्ताव अधिवेशन में रखा। श्री दत्तो वामन पोद्दार ने उसका अनुमोदन किया और प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हो गया। उस समय का साने गुरु का भाषण उनके अन्तःकरण के तीव्र भाव को व्यक्त करने वाला था।

राष्ट्रीय एकता का ही एक मात्र विचार उनके मन में सदैव घूमा करता था। भारतीय संविधान में जाति, धर्म, वंश, भाषा का उल्लेख किये बिना अखिल भारतीय नागरिक की घोषणा की गई है। गुरुजी हमेशा यह सोचते रहते थे कि घोषणा के अनुसार लोगों का व्यवहार कैसे हो? 'आन्तर भारती' भारत के अन्दर व्यवहार के लिए और विश्व भारती भारत के बाहर अन्य देशों के साथ व्यवहार के लिए सूत्र बनना चाहिये। इसी दृष्टि से वे कहा करते थे 'अविभक्त विभक्तेषु'। अर्थात भेदपन दूर हो जावे और लोगों में भक्ति भावना जागृत हो।

अपनी 'आन्तर भारती' की कल्पना को समझाते हुए गुरुजी कहते हैं—"सर्वत्र मानवता के दर्शन होवें, सर्वत्र समानता हो, ऊंच-नीच का भेदभाव समाप्त हो जावे। मेरे जीवन में तो यह भेदभाव न रहे—ऐसी मेरी तीव्र इच्छा है। एक समय ऐसा था, जब मुझे लगता था कि सब कुछ छोड़कर हिमालय चला जाऊं और वहां भगवान के दर्शन करूं। लेकिन भगवान हिमालय पर मिलते है यहां क्यों नहीं? प्रभु के साक्षात्कार का अर्थ है सर्वत्र मंगलमय वातावरण। जीवन में अपने सिद्धान्तों के अनुसार चलते हुए भी दूसरों के प्रति सहानुभूति रखना। आज मुझे भगवान के दर्शन की कोई पिपासा नहीं है। मैं किसी तरह अपना जीवन जी रहा हूं। अपनी बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न करता हू। अपने विकार स्वार्थ और अहंकार पर विजय प्राप्त करना चाहता हूं। भगवान का स्मरण करते ही मैं अपना मस्तक श्रद्धा से झुका देता

हूं। ऐसा करने में मुझे असीम शान्ति मिलती है। मुझे एकता की प्यास है। भारत को मैं जगत का प्रतीक मानता हूं। भारत की सेवा में ही मानवजाति की सेवा है। यहां पर सारे धर्म हैं, सारी संस्कृतियां हैं। रामकृष्ण परमहंस ने सब धर्मों का साक्षात्कार किया था। गांधीजी ने अपने जीवन में सब धर्मों को स्वीकार किया। हम सब को इस एकता को विश्व एकता में परिणत करना है।

हम आज तक 'अखंड भारत' कहते तो आये हैं, परन्तु इस भारत का हमें ही ज्ञान नहीं है। ये सारे प्रान्त मेरे है, ये सभी भाषाये मेरी हैं। भारतवासी सभी मेरे भाई हैं। मैं सबसे मिलूंगा, सबको जानूंगा— ऐसा हम कब सोचते हैं। गांधीजी समय निकाल कर देश की अन्य भाषायें सीखते थे। पूज्य विनोबा जी भी यही करते रहे। हम में से कितनों को इसकी प्यास है। बम्बई में जर्मन, फ्रेंच भाषा सिखाने की व्यवस्था है, मगर ऐसी कोई संस्था नहीं है, जहां भारत की सभी भाषाओं के सीखने की व्यवस्था हो। इसी काम को पूरा करने के लिए मैं 'आंतर भारती' संस्था बनाना चाहता हूं।

"सुन्दर-–सी जगह हो। सरकार से प्राप्त की जाय, अथवा कोई सज्जन दे दें, तो उसे लिया जाय। वहीं भिन्न-भिन्न भाषाओं के ज्ञाता हों। उन सब को हिन्दी आनी चाहिए। उन-उन भाषाओं का साहित्य वहां रहे। संस्था से जुड़ा हुआ एक विद्यालय रहे। खेती हो, ग्रामोद्योग की व्यवस्था हो। भारतीय भाषाओं के सिखाने की वहां सुविधा हो। विद्यार्थी सब भाषाओं को सुनेंगे। विभिन्न भाषाओं के साहित्य को मराठी में अनुवाद किया जाय। दूसरी भाषाओं की मासिक पत्रिका निकाल कर उस-उस प्रदेश की सम्पूर्ण बातों का सब को परिचय कराया जाय। मेरी 'आन्तर भारती' योजना का यह रूप है।

"गुरुदेव रवीन्द्रनाथ विश्वकवि हैं। उन्होंने सम्पूर्ण विश्व से भारत का सम्बन्ध बना रहे, इसलिए विश्वभारती की स्थापना की। पूर्व और पश्चिम पास आवें। पृथ्वी गोल है। वह पूर्ण है। पूर्व से चला आदमी पश्चिम में और पश्चिम से चला व्यक्ति पूर्व में पहुंचता है। भारत को विश्व का अनुभव लेना है, परन्तु उससे पहले उसे अपना अनुभव लेना है। आज भारत के सभी प्रांतों की एक दूसरे की पहचान कहां है? हर एक प्रान्त के सांस्कृतिक कार्यों की जानकारी हमें कहां है?"

'आन्तर भारती' भारतीयों को एक दूसरे से प्रेम पूर्वक पहचान करा देगी। प्रत्येक प्रदेश के श्रेष्ठ पुरुषों और नेताओं के वहां चित्र होंगे। इन चित्रों को दिखाकर नई पीढ़ी को बताया जायगा कि ये सब नए भारत के निर्माणकर्ता

हैं। साहित्य के साथ-साथ चित्रकला, नृत्यकला आदि की शिक्षा दी जायेगी। सरकारी शिक्षा दी जाय। नवभारत के निर्माण का यह एक तीर्थ बने। यह है 'आन्तर भारती' का मेरा सुन्दर स्वप्न। आन्तर भारती के बच्चे छुट्टी मनाने गांव-गांव जायेंगे। वहां नाटक तथा अन्य कार्यक्रम प्रस्तुत करेंगे। सफाई करेंगे। सहकारी कार्य करने के लिए ध्येयवादी युवक सामने आयेंगे। ग्रामीण कला का विकास होगा। कोंकण के खेल और नाच वहां सिखाए जायेंगे।

केवल भाषा का ज्ञान देना इस संस्था का ध्येय नहीं है। वहां और भी अनेक कार्य होंगे। कला और ग्रामीण जीवन से परिचय कराना है। कलाकार लोग यह बतायेंगे कि ग्रामीण व्यवसाय के द्वारा कला का विकास कैसे हो। सादी चटाई में सुन्दरता कैसे लाई जावे, सादी टोकरी को कैसे कलापूर्ण बनाया जाय, मिट्टी के बर्तन कैसे सुन्दर बनाए जाएं– इन सब बातों की शिक्षा वहां दी जाएगी। इसलिए वहां ग्रामोद्योगों के विशेषज्ञों और कलाकारों को विशेष सम्मान के पद दिए जाएंगे। संस्था के आसपास यदि खाली जमीन होगी, तो उसमें फल-फूल उगाए जाएंगे। खेती की जायेगी। विद्यार्थी स्वयं श्रमदान करेंगे। कुछ नया निर्माण करेंगे। आनन्द, सेवा, संस्कृति, उदारता, ज्ञान-विज्ञान कला आदि की प्रवृत्ति 'आन्तर भारती' निर्माण करेगी। 'आन्तर भारती' का मेरा ऐसा सुन्दर स्वप्न है।

"राष्ट्र की महान एकता का अनुभव जीवन में किया जाय। अनेक प्रकार की महत्वपूर्ण कल्पनाओं को साकार करने का काम लोग स्थान-स्थान पर कर रहे हैं, यह दिखाई देने लगे। हिन्दू मुसलमान, छूत-अछूत सब मिलकर राष्ट्र के नव निर्माण का कार्य करें। प्रान्तों के लोग एक दूसरे से प्रेम से मिलें। एक दूसरे की संस्थाओं को देखें, उनकी मदद करें, दूसरों से स्फूर्ति ग्रहण करें इस प्रकार का वातावरण होना चाहिये। भारतीय एकता के मधुर भाव को अनुभव करने के लिए विविध कार्य किये जाने चाहिये।

स्वतंत्र भारत की भव्य इमारत को खड़ा करना है। भाषावार प्रान्त रचना तो पहले से ही तय है। लेकिन ऐसी रचना करते समय एक दूसरे से द्वेष न करें। एक दूसरे के प्रति प्रेम रहे। परस्पर सहयोग रहे। यह कोई न भूले कि भारत का हृदय एक है। भारत के प्रान्त भले अनेक हैं, पर भारत का हृदय एक ही है। प्रान्त की दृष्टि से भारतीय, और भारत की दृष्टि से सबको 'अति भारतीय' होना चाहिए। क्षुद्रता को छोड़ना होगा। कार्यक्षेत्र बढ़ेगा, तो वैभव भी बढ़ेगा। सारे प्रान्त एक दूसरे के प्रति प्रेम रखें। भारत का एक ही हृदय है। आन्तर भारती और विश्व भारती ऐसे हमारे दो ध्येय हैं। प्रान्तों का एक दूसरे के साथ घनिष्ट स्नेह सम्बन्ध आन्तर भारती है और विश्व से

स्नेह सम्बन्ध रखना रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'विश्व भारती' है।"

सम्पूर्ण महाराष्ट्र में घूमकर अपने प्रवचनों के द्वारा जनता का सहयोग प्राप्त करने का विचार साने गुरु के मन में आया। उन्हें लगता था कि मित्रों से भी उन्हें सहायता मिलेगी। वे कहते थे कि भारतीय एकता का महान ध्येय समझाने वाली 'आन्तर भारती' महाराष्ट्र में खड़ी हो जाय। भारतीय एकता के साक्षात्कार के लिए मैं एक उत्सुक महाराष्ट्रीय बालक हूं। इस बालक की इच्छा को बड़े लोगों को पूरा करना चाहिए।

महाराष्ट्र की जनता निष्ठुर नहीं है। मुझे पूरी आशा है कि वह कोमल हृदय से एक जिद्दी बालक के स्वप्न को अवश्य पूरा करेगी। 'आन्तर भारती' के पूर्ण रूप को देखने का मैंने निश्चय किया है।

अपने जीवन के अन्तिम स्वप्न के बारे में साने गुरु सोते जागते विचार करते रहते थे। उसी की उन्हें सिर्फ चिन्ता थी। वे अपनी बची हुई जीवन-शक्ति को इसी काम में लगा देना चाहते थे। बम्बई में जोगेश्वरी के निकट लम्बी अवधि के लिए जगह प्राप्त करने का उनका विचार था। दोस्तों में चर्चा चल रही थी। गुढी पड़वा के दिन वहां एक छोटा-सा कार्यक्रम भी हुआ। साने गुरु की आशायें पल्लवित हुईं। ऐसा लगने लगा कि जगह की समस्या हल हो जावेगी। अब अन्य बातों की चिन्ता होने लगी। साने गुरु का स्वास्थ्य कभी-कभी ठीक नहीं रहता था। थायरॉईड की तकलीफ अधिक बढ़ गई। इसलिए एक छोटा आपरेशन करना पड़ा। उसके बाद उन्हें बुखार आने लगा। लेकिन आराम मिलना कठिन था। 'साधना' का काम युवकों को देने का विचार उनके मन में आने लगा। साने गुरु ने आचार्य जावड़ेकर जी से प्रार्थना की कि वे 'साधना' के लिए नियमित रूप से लिखते रहें। उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया, इसलिए गुरुजी का कुछ काम हल्का हो गया।

बच्चों के और युवकों के मन को दुखाना साने गुरु को अच्छा नहीं लगता था। इसलिए उन्हें बहुत कष्ट सहन करना पड़ता था। सेवादल के कार्यक्रमों में अनुपस्थित रहना उन्हें असह्य होता था। सेवादल के वार्षिक शिविर में बच्चे उनकी प्रतीक्षा उत्सुकता से करते थे। और गुरुजी से भी वहां जाये बिना रहा नहीं जाता था। सन् 1950 के मई महीने में सांगली में हुए सेवादल के शिविर में वे पहुंचे और वहां हृदय से हृदय मिलाने का प्रयत्न किया। सेवादल को वही उनका अन्तिम संदेश था। उन्होंने कहा :

"जिस देश को जनतंत्र के मार्ग में जाना है, उसे सद्गुणों का बनाए रखना परम आवश्यक है। जहां संयमी, विवेकी, सत्यनिष्ठ, प्रमाणिक लोग होंगे, वहां व्यक्ति-स्वातंत्र्य बढ़ सकेगा। यदि व्यवहार भ्रष्ट होगा, सार्वजनिक

जीवन की कीमत घट गई, तो इस राष्ट्र से किसी चीज की आशा नहीं रखी जा सकेगी। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि हम समझें कि हम सब एक हैं। तुम सब हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण-अब्राह्मण एक हो जाओ। छूत और अछूत में भेदभाव नहीं चाहिए। एक साथ उठो बैठो, खाओ-पिओ, खेलो-कूदो, काम करो। हम सब भारत माता के बच्चे हैं।

जाति-धर्म-निरपेक्ष महान राष्ट्रीय भावना की आज जरूरत है। अधिक अन्न उपजाना, सफाई, साक्षरता प्रचार और सहकारी शिक्षा— ये सब बातें आज समाज के लिए आवश्यक हैं। सेवादल को प्रथम अपने को इसका पात्र बनाकर फिर राष्ट्र में इसका प्रचार करना चाहिए। छोटी से छोटी सेवा का भी महत्व है। रास्ते में पड़े केले के छिलकों को भी उठा फेंकना भी सेवाकार्य है। छोटी सेवा और बड़ी सेवा में कोई भेद नहीं है। सेवा में लगन है, भावना है—यह महत्व की बात है। जब तक सेवादल के पास सेवा की भावना है, सेवादल अमर है। सेवादल को प्रतिदिन कुछ प्रत्यक्ष सेवा करनी चाहिए। दिन में सफाई करो, रात्रि में साक्षरता का प्रचार करो। गांवों की गन्दगी को एक जगह इकट्ठी कर उसकी खाद बनाओ, बंजर जमीन को खेती योग्य बनाओ, फल और सब्जी उगाओ। चटाई बनाना, बुक बाइंडिंग जैसा कुछ व्यवसाय करने योग्य काम सीखो। अपने हाथ से वस्तु बनाने वालों की आज देश को जरूरत है। खाली बैठने वाले व्यक्ति तो मुर्दे के समान हैं।

सरकारी संस्थायें चल रही हैं। सहकारी खेती हो रही है। स्टोर चल रहे हैं। परिश्रमालय चल रहे हैं और अनेक वस्तुएं तैयार हो रही हैं। जिसने आलस्य को त्याग दिया, क्षुद्र भेदभाव जिसे ज्ञात नहीं, जातिभेद, धर्मभेद, प्रान्तभेद न मानने वाले, अन्तरात्मा को देखने की दृष्टि रखने वाले सैकड़ों सेवादल के युवक सैनिक जब भारत को मिलेंगे, तो भारत का स्वराज्य पुरुषार्थप्रद हो जावेगा।"

नित्य नये विचार सुनाते हुए माने गुरु का प्रत्येक दिन बीत रहा था। जीवन के अन्तिम क्षणों में अपने पास का सारा विचार-धन बांट रहे थे। यह कितना सत्य था !

14. अमृत पुत्र

स्वतंत्र हो जाने के पश्चात् भारत की जो स्थिति थी, उसे देखकर साने गुरु बड़े बेचैन और दुखी रहते थे। देश में बढ़ती हुई चरित्रहीनता, ध्येयशून्यता, आपसी बैर, संकुचित जातीय भावना और व्यक्तिगत सत्तालोप इन सबको देखकर साने गुरु जैसे कवि हृदय को बहुत दुख होता था। गुरु जी सन्त थे, भक्त थे, ध्येय का नित्य चिन्तन करते थे। सत्य, शिव और सुन्दर जन्म के निर्माण के लिए सतत कार्य करते रहना उनके जीवन का प्रधान कार्य था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे लिखा करते थे, भाषण देते थे। 'अन्तरभारती' उनके काम की दिशा थी और उसका सही मार्गदर्शन करने के लिए वे उत्तर में अहमदाबाद और दक्षिण में हुबली धारवाड़ तक दौरा करते रहे। महाराष्ट्र में जहां कहीं से बुलावा आया, वे वहां पहुंचते थे। किन्तु शारीरिक पीड़ा और मन की अस्वस्थता से वे परेशान थे। अस्वस्थता बढ़ती ही जा रही थी। रामकृष्ण परमहंस, रवीन्द्रनाथ टैगोर और गांधी जी ने जिस प्रकार के भारत की कल्पना की थी, भारत को वैसा बनता हुआ न देखकर साने गुरु बड़े दुखी हो रहे थे। सारे प्रयत्न करने के बाद भी उस दिशा में कुछ भी प्रगति नहीं हो रही थी, यह देखकर उन्हें बहुत कष्ट होता था। व्याकुलता बढ़ती थी। साने गुरु को अपना जीवन निरर्थक लगने लगा था।

उन्होंने एक स्थान पर लिखा—"अब मुझे अपना स्थान कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा है। मैं किसी वर्ण का नहीं हूं। नवीन सर्वोदयकारी विचार देने वाला न मैं ब्राह्मण हूं और न अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने वाला क्षत्रिय हूं। देश में व्यापार के क्षेत्र में सुधार कैसे होगा और कृषि तथा गोरक्षण कैसे सुधरेगा, ग्रामोद्योग कैसे बढ़ेगा, कागज का धन्धा फिर से कैसे जीवित होगा, इनके सम्बन्ध में मुझे कुछ भी मालूम नहीं। मैं मेहनत मजदूरी करने वाला शूद्र भी नहीं हूं, क्योंकि मैं दिन भर शरीरश्रम नहीं कर सकता। मुझे मजदूरी की आदत भी नहीं है। फिर मेरी यहां क्या जरूरत? रात-दिन मुझे यह विचार बेचैन किये रहता है। मुझे खाना विष के समान लगता है। जीना असह्य लग रहा है। जिसको मन से ऐसा लगने लगे कि वह जीने के योग्य नहीं

रहा, तो उसे अपना जीवन समाप्त कर देना चाहिये।"

"दिन रात मुझे अशान्ति की आग जला रही है। मेरे जीने से औरों को आनन्द मिलता है, इसलिए मैं जी रहा हूं, लेकिन उनका यह आनन्द आसक्त-मय है। क्या मेरा दुख उन्हें दिखाई नहीं देता। केवल उनके सुख के लिए मैं अपने जीवन की होली जला रहा हूं। कभी जग का तिरस्कार करता हूं। कभी सोचता हूं मैं मर जाऊं। मगर ऐसा सोचते समय मैं थोड़ा कृतघ्न बन जाता हूं। इस जीवन में मुझे असीम प्रेम और सहानुभूति मिली है। इतनी प्रेम-वर्षा करने वाले मित्र शायद ही दूसरे किसी को मिले होंगे। ऐसा होने पर भी मुझे संसार में रहना क्यों कष्टदायी हो रहा है? कष्ट का एक ही कारण है, वह यह है—संसार ने मेरे प्रति जो इतना असीम प्यार दिखाया है, उसका बदला मैं कैसे दूं? यही सोचकर मुझे दुख होता है। मेरी समझ में यह नहीं आता कि मेरे जैसे कर्महीन व्यक्ति को दुनिया इतना प्यार क्यों देती है? उस प्रेम से मैं छूटना चाहता हूं। वह प्रेम ही मुझे मरने को कहता है।

किसी तरफ से देखो, उत्तर एक ही मिलता है—मृत्यु। हे मृत्युदेव तुम सचमुच माता के समान हो। थके हुए बालक को मां जिस प्रकार पीछे से आकर उठा लेती है, उसी प्रकार थके हुए जीवों को पास बुलाकर फिर से उन्हें जीवन-रस पिलाती हो। मृत्यु मां! सबको तुम से भय लगता है। यह उनकी मूर्खता है। मैं तुम से प्रेम करता हूं। आज तक किसी ने मृत्युगीत नहीं गया। मैं गाऊंगा और मृत्यु का स्वागत करूंगा।

मृत्यु कोई भयंकर बात नहीं है। मृत्यु जीवन का फल है। मृत्यु से ही जीवन में कोपलें अंकुरित होती हैं। मृत्यु अर्थात् ईश्वर के पास जाने का द्वार। मां जैसे बच्चे को रिक्त हुए स्तन की ओर से उठाकर भरे हुए स्तन की ओर ले जाती है, वैसे ही मृत्यु जीवन से भरे एक स्तन के खाली हो जाने पर जीवन से भरे दूसरे स्तन की ओर हमें ले जाती है। इस दूसरी ओर ले जाने को, मृत्यु ही कहते हैं। इसलिए मृत्यु, मृत्यु नहीं जीवन ही है। वेदों में कहा गया है कि जीवन और मृत्यु—दोनों ईश्वर की छाया हैं। उपनिषद में कहा गया है कि मृत्यु भी प्राण ही है। मृत्यु अर्थात् जीवन।

मृत्यु का अर्थ है जीवन के वृक्ष पर लगा हुआ मीठा फल। गीता में मृत्यु को वस्त्र उतारना कहा गया है। काम करते-करते शरीर रूपी वस्त्र जीर्ण हो जाता है, फट जाता है, तब त्रिभुवन की मां नवीन वस्त्र देने के लिए बुला लेती है। फिर नया वस्त्र पहना कर वह इस विश्व में खेलने के लिए भेजती है। दूर बैठी-बैठी वह देखती रहती है। यह मां गरीब नहीं है। उसके भंडार में अनन्त वस्त्र भरे पड़े हैं। जिस प्रकार बच्चे एक पतंग फट जाने पर नयी

पतंग तैयार करते हैं, वैसा ही ईश्वर करता है।

बच्चों की पतंगों की तरह भगवान की पतंगें भी नाना प्रकार की होती हैं और करोड़ों-करोड़ों की संख्या में होती हैं। फट जाने पर नयी पतंगें अस्तित्व में आ जाती हैं। यह विराट खेल सदा चलता रहता है। मृत्यु का अर्थ है महायात्रा। मृत्यु का अर्थ है महानिद्रा। दिन की दौड़-धूप के बाद हम रात में सोते हैं। नींद का अर्थ है छोटी मृत्यु। सम्पूर्ण जीवन की दौड़-धूप के बाद हम सब सोते हैं। नित्य की नींद सिर्फ आठ घंटे की होती है, किन्तु यह नींद लम्बी होती है। इतना ही अन्तर होता है।

मृत्यु अर्थात् मां की गोद में जाकर सोना। मां की गोद में सोकर बच्चा जगकर अधिक उत्साह से खेलने लगता है। यही हाल जीवन का है। दुनिया के थके हुये लोगों को यह माता उठा लेती है। जन्म देने वाली माता, भारत माता और विश्वमाता जगदम्बा। इन माताओं ने अब तक पाला-पोसा। अब मृत्यु की गोद में रख कर वे मातायें विदाई लेंगी। मृत्यु उपकारक है। जीवन में कभी-कभी जो काम नहीं हो पाता, वह मृत्यु के द्वारा हो जाता है। हम सोचते हैं मृत्यु अर्थात् अंधकार। यह ठीक नहीं है। मृत्यु का अर्थ है अमर और अनन्त प्रकाश। मृत्यु का अर्थ है नव निर्माण, अनन्त जीवन, अमर आशावाद। मरण का अर्थ है फिर से नवीन जीवन-ज्योति जगाना, नवीन उत्साह के साथ ध्येय तक पहुंचने का मार्ग। फिर मृत्यु का भय क्यों? नींद से डर नहीं लगता, तब मृत्यु से क्यों डरा जाय?

और वह निर्णायक समय आ गया। महात्मा गांधी का निर्वाण शुक्रवार के दिन हुआ था। गांधी जी की स्मृति में साने गुरु उस दिन उपवास करते थे। 9 जून 1950 का दिन भी शुक्रवार था। साने गुरु उस दिन विशेष उत्साह में थे। वे मन ही मन गा रहे थे—

कर ले श्रृंगार चतुर अलबेली
साजन के घर जाना होगा।
मिट्टी बिछावन मिट्टी उठावन
मिट्टी में मिल जाना होगा॥
नहा ले, धो ले, शीश गुंथा ले
फिर न वहां से आना होगा॥

यह सुन्दर गीत वे गुनगुना रहे थे। मृत्यु अर्थात् दुनिया से वियोग, मगर जगदीश्वर से योग। आत्मा और परमात्मा का मधुर मिलन अर्थात् मृत्यु।

इसी प्रसन्नता में गुरु जी ने स्नान किया। खादी के नये कपड़े पहने। सब को पत्र लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा "जनतंत्र, सत्याग्रह, समाजवाद को ही ध्येय बनाओ—यही मेरा अन्तिम, भक्ति-प्रेम का और कृतज्ञता का संदेश है। यही उद्धार करेगा। जाति के भेद को भूल कर अहिंसक जनतंत्र और सत्याग्रही दृष्टि रखो। भारत में बिना रक्तपात के समाजवाद का आगमन हो। व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ समाजवाद विकसित हो। पूज्य विनोबा का स्मरण।"

जेब में 30 रुपये और एक पत्र लिख कर रखा था। पत्र में लिखा था "अन्तिम संस्कार के लिए। पहने हुए कपड़ों के साथ ही संस्कार किया जाय। मरे हुए की इच्छा का पालन हो।"

एक दूसरी चिट्ठी में लिखा था "मैं शरीर से और मन से अस्वस्थ हूं। नींद की गोलियां लेकर सो रहा हूं। सिर में असह्य वेदना हो रही है। पास की नींद की गोलियां ले रहा हूं। निद्रा लगेगी या चिर निद्रा लगेगी, कह नहीं सकता। चिर निद्रा लगे, तो भूलचूक माफ करना।"

इसके बाद वे शान्त मन से सो गये।

शाम को लौट कर लोगों ने उन्हें सोया पाया। उनके हृदय को धक्का लगा। डाक्टर बुलाये गये। डाक्टर उन्हें अस्पताल ले गये। 11 जून 1950 को प्रातः 4 बजे उनकी जीवन ज्योति बुझ गयी।

उनकी मृत्यु के बाद विनोबा ने लिखा था "साने गुरु का मृत्यु लेख मुझे लिखना पड़ेगा ऐसा मैंने कभी सोचा न था। वे मुझ से उम्र में छोटे और शरीर से स्वस्थ थे। 50 वर्ष की आयु थी। इतने थोड़े काल में उन्होंने कितना बड़ा काम किया। महाराष्ट्र की सम्पूर्ण तरुण पीढ़ी उनके विचारों पर मोहित थी। बच्चों से उन्हें विशेष प्यार था।"

रामकृष्ण, रवीन्द्र और गांधी इन तीनों को वे भगवान मानते थे। तीनों के अंश उनमें थे। आते-जाते, उठते-बैठते, कार्य करते, देते-लेते, बोलते, खाते-पीते चौबीसों घंटे दूसरों के हित चिन्तन के सिवा उन्होंने अन्य कुछ सोचा ही नहीं था। ऐसे महापुरुष साने गुरु थे।

"वे राजनीति पुरुष नहीं थे। मगर गरीबों का दुख देखकर उन्हें राजनीति के क्षेत्र में आना पड़ा, बोलना पड़ा, लिखना पड़ा। तभी से वे समाजवादी बने। वास्तव में वे समाजवादी के स्थान पर समाजसेवी थे। उनकी विशाल आत्मा सबके गुण लेने वाली थी। अच्छाई उन्होंने सब से ली।"

"असीम साहित्य का उन्होंने निर्माण किया। फिर भी वे अपने को साहित्यकार नहीं मानते थे। लिखे बोले बिना उनसे रहा नहीं जाता था,

इसलिए लिखते थे, बोलते थे,। गरीबों का दुख उनसे साहित्य लिखवाता था।"

"तुकाराम आदि सन्तों की माला में मैं उनकी गणना करता हूं। वे योगी नहीं थे, वे आर्त भक्त थे। दूसरों को पीड़ा देने वाला मेरा शत्रु है ऐसी उनकी भूमिका थी। उनमें रागद्वेष भी इसीलिए प्रबल था, पर वह सब भगवान के चरणों पर चढ़ा होता था।

1932 में धुलिया जेल में मेरा उनका प्रथम मिलन हुआ था। प्रथम भेंट में ही गहरी मित्रता हो गई। उनका स्नेहभाव उत्तरोत्तर बढ़ता गया। यह मेरे ऊपर उनकी अपार कृपा का फल था। उनकी मृत्यु पर मुझे विश्वास नहीं होता। यह उन्होंने एक नाटक किया है—ऐसा मैं मानता हूं 'अमृत पुत्र' यह उनकी यथार्थ पदवी थी।"

16. युग धर्म

भारतीय संस्कृति में सर्वत्र अद्वैत का भाव व्याप्त है। उसमें अद्वैत की मांगलिक सुगन्ध भरी है। भारत के उत्तर में जिस प्रकार ऊंचा गौरीशंकर शिखर है, उसी प्रकार संस्कृति की आधार शिला के रूप में उच्च और सुन्दर अद्वैत दर्शन विद्यमान है। शिव के पास शक्ति रहेगी ही। सत्य के निकट सामर्थ्य रहेगी, उसी प्रकार प्रेम के पास पराक्रम रहेगा ही।

अद्वैत का अर्थ है—शिवत्व। अद्वैत का अर्थ है निर्भयता।

संसार में भेदभाव रहने का अर्थ है दुख का रहना। समभाव सुखदायक है। सुख प्राप्त करने के लिए कितनी ही दौड़ धूप की जाय, उसके पाने के लिए अद्वैत के सिवा और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

ऋषि का कथन है कि जिस किसी के प्रति तुम्हारे मन में परायेपन का भाव है, उसके निकट पहुंच कर उसको गले लगाओ। "सहनावदतु सहनौ भुनक्तु, सहवीर्यं करवा वहै, तेजस्विनावधीतमस्तु, मा विद्विषावहै।"

इस सुन्दर मंत्र का अर्थ क्या है? इस मंत्र का सिर्फ एक स्थान पर उच्चारण नहीं करना है। सभी जगह उसका उच्चारण करना उचित है और उसके अनुसार आचरण करना उचित है।

इस मंच का स्थान गुरु-शिष्य तक ही सीमित नहीं है। ब्राह्मण का अब्राह्मण के प्रति, अब्राह्मण का ब्राह्मण के प्रति परायापन क्या ठीक लगता है? क्या उन दोनों को एक स्थान पर आने देते हैं और जपने देते यह मंत्र? छूत और अछूतों में वास्तव में क्या दूरी है? क्या उन्हें पास आने देते और उच्चारण करने देते यह मंत्र? हिन्दू मुसलमान क्यों घोर शत्रु हैं? क्या उन्हें एक दूसरे के निकट आने देते और एक दूसरे का हाथ पकड़ कर इस मंत्र का उच्चारण करने देते? गुजराती और महाराष्ट्रीय लोगों में क्या सचमुच कोई द्वेष भाव है? क्या इन दोनों को निकट आने देते और उच्चारण करने देते इस मंगलमय मंत्र का?

भेदभाव मिटाने के लिए यह मंत्र है। सारे संसार में भेदभाव का जो घोर अंधकार फैला है, उसे दूर करने के लिए ऋषि ने इस मंत्र के रूप में एक

दिव्य दीपक हमें दिया है। आइये, इस दीपक को हाथ में लेकर हम देखें। आइये, हम वैसा व्यवहार करें, तो हमें निश्चय ही आनन्द की प्राप्ति होगी।

यह सृष्टि एक प्रकार से हमें अद्वैत की शिक्षा देती हैं। मेघ अपना सारा पानी दे डालते हैं, पेड़ अपने फल देते हैं, फूल अपनी सुगन्ध देते हैं, नदियां अपना सारा जल देती हैं। सूर्य और चन्द्र अपना प्रकाश देते है। जो कुछ भी है, उसे सबको दो। सब मिलकर उसका उपभोग करें।

आकाश के तारे सबके लिए है। जीवन देने वाली वायु सबके लिए है। परन्तु मनुष्य ने दीवारें खड़ी करके उन पर अपना अधिकार जमा रखा है। जमीन सबकी है। सब मिल कर उसका उपभोग करें। अनाज पैदा करें। परन्तु मनुष्य ने धरती के टुकड़े कर रखे हैं और कहता है—यह मेरा टुकड़ा है। इससे संसार में अशान्ती पैदा होती है। ईर्ष्या-द्वेष पैदा होता है। अपने को समाज में विलीन करना चाहिये। पिंड को ब्रह्माण्ड में विलीन करना चाहिये। आखिरकार व्यक्ति समाज के लिए ही तो है। पत्थर इमारत के लिए ही है। बूंद समुद्र के लिए ही है।

आज इस अद्वैत भाव को कौन देखता है? कौन अनुभव करता है? इस अद्वैत भाव को जीवन में लाना, मानो आनन्द को ही जीवन में लाना है। जिसे सर्वत्र लाखों भाई दिखाई देते हैं उसका जीवन कितना धन्य होगा।

समाज में यदि परायेपन का भाव रहा तो, इसका अर्थ हुआ दम्भ, अज्ञान, रूढ़ि, भेदभाव, ऊंचनीचपना, छूत-अछूत का भाव, विरोध, दरिद्रता, दीनता, दासता, कायरता, निर्बलता- इन सबकी महफिल लग जाती है। ये सब भेदभाव की प्रजा है। समाज में यदि भेदभाव रहा, तो ये सारे भीषण दृश्य दिखाई देने लगते हैं।

हम सबने सर्वत्र गड्ढे तैयार कर रखे हैं। प्रारम्भ में एक जाति की, एक गड्ढी और फिर उस गड्ढी में और अनेक गड्ढियां बना ली हैं। इस प्रकार की गड्ढियां बनाकर उनमें रहने वाले और उन पर व्यर्थ अभियान करने वाले टर्र-टर्र करने वाले हम सब एक तरह से मेढक बन गये हैं। कीचड़ में ही रहना और कीचड़ ही खाना हमारा काम हो गया है। यही सब हमारा उच्च ध्येय बन गया है।

जाति-जाति की, छूत-अछूत की, ब्राह्मण-अब्राह्मण की, हिन्दू-मुसलमान की सैकड़ों गड्ढी हैं। इनके अलावा गुजराती महाराष्ट्रीय, तमिल, बंगाली, ये अनेक प्रान्तीय गड्ढी तो हैं ही। गड्ढी में रहने वालों को प्रसन्नता का प्रसाद नहीं होता। गड्ढी भरी कि उसमें गन्दगी पैदा होती है। डॉस-मच्छर का झुंड वहां हो जाता है। रोग उत्पन्न होते हैं।

भारत भूमि का भला यदि हम देखना चाहते हैं, तो इन गड्डियों को दूर करने के लिए हमें तैयार होना चाहिये। भेदभाव की दीवारों को उखाड़ फेंकना चाहिये। सारे प्रवाहों को प्रेम से निकट आने देना होगा—फिर सागर में ज्वार आने दो। भेदभाव की औषधि अभेदवाद ही है। विष पर अमृत के सिवाय और कुछ नहीं चल सकता।

भारत भूमि में एकता का निर्माण करने के पश्चात् हम संसार से कहें—यह भारत मानव जाति का तीर्थस्थल है। सारे धर्म और विभिन्न संस्कृतियां यहां एकत्रित हैं। यह सुनकर संसार के सारे देश भारत के निकट आ जावेंगे। यह इतिहास द्वारा दिया हुआ महान कार्य हम सब को पूर्ण करना है। यह महान ध्येय हम सब को अपने पास बुलाता है। इस महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए क्षुद्रता के सारे झाड़-झंकार अच्छी तरह साफ करने होंगे।

भारतीय संस्कृति के उपासकों को श्रद्धा के साथ त्यागपूर्वक इस कार्य के लिए तैयार होना है। निर्मल विचार और शुद्ध दृष्टि की इसके लिए आवश्यकता है। यहां जल्दबाजी और अधीरता का कोई प्रश्न नहीं है। कोई स्वार्थ नहीं, कोई आलस्य नहीं। निर्मलता होनी चाहिये और गहरे अभ्यास की आवश्यकता है। इसमें प्रयत्न अवश्य करना होगा, कष्ट भी भोगना पड़ेगा। समाज के लिए प्रेम और आस्था की आवश्यकता है। समाज किस तरह सुखी बने, इसकी लगन लगी, कि फिर विचार करना शुरू होगा कि जो फलस्वरूप विचार सामने आये उसके अनुसार आचरण करना होगा। और फिर इस विचार को इस आचरण को 'युगधर्म' नाम दिया जायेगा। 'आन्तर भारती', 'विश्व भारती' ऐसा ही युगधर्म है।